ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक—२३६
सम्पादक एवं नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series : Title No. 236
USTADANA KAMAL
AYODHYAPRASAD GOYALIYA
Bharatiya Jnanpith
Publication
First Edition 1966
Price Rs. 4.00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण १९६६
मूल्य ४.००
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी-५

तालिका

ये इस्लाहें

इन तल्ख़ आँसुओंको न यूँ मुँह बनाके पी
ये मै है खुद कशीद इसे मुस्कराके पी
उतरेंगे किसके हल्क़से यह दिल ख़राश घूँट
किसको पयाम दूँ कि मेरे साथ आके पी

इस्लाह लेने-देनेका रिवाज उर्दू-शाइरीके जन्मकाल ही से चला आ रहा है। शेर कहना उतना मुश्किल नही, जितना कि उसका समझना। लगन और परिश्रमके बल-बूतेपर शेर कहनेका अभ्यास तो हो सकता है, किन्तु शेरको समझना, परखना, उसकी अच्छाई-बुराई, खूबी और ऐब-पर आलोचनात्मक दृष्टि पड़ना बहुत मुश्किल है। यदि नीर-क्षीर विवेक-दृष्टि सौभाग्यसे प्राप्त हो भी जाये तो शेरके ऐबोंको निकालकर उसे चमका देना हर उस्तादसे सम्भव नही। सोनेके खरे-खोटेकी तो परख सर्राफ कर सकता है, परन्तु उसका खोट निकालकर उसे शुद्ध बनाना उसके वशका नही, यह काम सुनार ही कर सकता है।

इस्लाह देनेकी क्षमता केवल—छन्दशास्त्र, अलंकार, साहित्य आदिमे पारंगत होनेसे नही आती, अपितु उसके लिए—शाइराना सूझ-बूझ, स्वानुभव और विवेक बुद्धि भी अत्यन्त आवश्यक है। इस्लाहसे न केवल शागिर्द ही को लाभ पहुँचता है, अपितु उस्तादका अभ्यास बढ़ता है और उत्तरोत्तर उसके काव्य-कौशलमे निखार आ जाता है, और नयी-नयी बातोंकी जानकारीके लिए अध्ययनकी भी प्रवृत्ति बढ़ती जाती है, ताकि वह अपने शिष्योको इस कलामे पारंगत कर सके। उस्तादोके मुद्रित कलामसे यह तो ज्ञात हो सकता है कि वे स्वयं क्या कहते थे और कैसा कहते थे, किन्तु उनकी समालोचक दृष्टि और

सूझ-बूझका अनुमान तो उन-द्वारा दी गयी इस्लाहो ही से हो सकता है शागिर्दने क्या कहा और उस्तादने तनिक-से संशोधनसे उसे क्यासे क्या बना दिया ?

कुछ महानुभाव इस्लाहको शिष्यके लिए अहितकर समझते है। उनका कथन है कि इस्लाहके बन्धनसे शिष्य अपने स्वयके विचार व्यक्त नही कर पाता और वह उस्तादका अन्ध अनुकरण करने लगता है। वह अपनी कल्पनाओ, उपमाओको व्यक्त करनेकी क्षमता खोकर उस्तादका आश्रित हो जाता है, किन्तु यह उनकी भ्रामक धारणा है। पक्षी, पशु, मानव सभी प्रारम्भिक अवस्थामे अपनेसे समर्थ एवं अनुभवियोसे शिक्षित-दीक्षित होनेके लिए बाध्य है। पक्षी अपने माँ-बापसे खाना-पीना और उडना सीखते है। तभी वे स्वतन्त्र विहारी होते है। पशु भी अपने शिशुओको चूम-चाटकर, दूध पिलाकर अपने पाँवोपर खडा होना सिखाते है और मानव तो जन्मसे मृत्यु तक अपने-परायोसे कुछ-न-कुछ सीखता ही रहता है।

मीर, गालिब, मोमिन, ज़ौक, मुसहफी आदिने भी अपने उस्तादोसे इस्लाहे ली, किन्तु कौन कह सकता है कि वे अपने स्वानुभव व्यक्त न करके उस्तादका अनुसरण करते रहे और स्वावलम्बी न होकर परमुखापेक्षी रहे। मिर्ज़ा दाग-जैसे रंगीन एवं शोख़ उस्तादके दो हज़ारके करीब शिष्य थे। जिन शिष्योका उनके रंगसे रुझान था, वे ही उनके रंगमे कहते रहे, किन्तु सर इकबाल, सीमाब अकबराबादी, जिगर मुरादाबादी, जोश मलसियानी, भी तो उन्हीके शिष्य थे। वे क्यो अपनी-नवीन डगर चुन पाये। हमारे कहनेका अभिप्राय केवल इतना ही है कि इस्लाह तो ऐसी रौशनी है जिसका प्रकाश शिष्यको अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचानेमे सहायक हो सकता है। अब कोई नासमझ रौशनीसे उजागर होनेवाली झाड-झंखाडोमे अपनेको फँसा ले, कुएँमे कूद पड़े या पर्वतसे लुढक पड़े तो उस प्रकाशका क्या दोष ? जो प्रकाश आँखोकी

रौशनीके लिए निहायत जरूरी है, उससे कोई कपड़ोमे आग लगा ले तो उसे जाहिलके सिवा क्या समझा जाये ?

अधकचरे उस्तादसे इस्लाह लेना नीम हकीमको नाड़ी दिखानेके समान है। इस्लाह देना बहुत बड़ा कौशल है। अतः सदैव प्रामाणिक एव सिद्धहस्त उस्ताद ही से मशवरए-सुखन लेना चाहिए। ताकि शाइरीका वास्तविक मर्म समझमे आ सके और इस कलामें निपुणता प्राप्त की जा सके। योग्य उस्तादसे इस्लाह लेनेमे विचार परिष्कृत होते है। शाइरीके सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वोंका ज्ञान होता है और अनेक नुक्तोका पता लगता है। 'राज' अहसनी स्वयं उस्तादीका मर्तबा रखते है। उनका यह शेर—

हमारे आशियाँसे आस्माँ तक रोक ही क्या थी
बलाए-बर्क़से महफ़ूज़ क्योंकर आशियाँ करते ?

ज़ाहिरामे बहुत अच्छा शेर है, किन्तु बाबाए-उर्दू 'जोश' मलसियानी-जैसे वयोवृद्ध और सिद्धहस्तकी आलोचक दृष्टिसे शेरकी ये तनिक-सी खामी छिपी न रह सकी। बिजली आस्मानसे जमीनपर गिरती है। अतः बिजलीके रवानगीके मकामका उल्लेख पहले और मंज़िलपर पहुँचनेका बादमें होना चाहिए था। अतः उन्होंने पहले मिसरेको इस तरह परिवर्त्तित कर दिया—

रुकावट कौन-सी थी चर्ख़से शाख़े-नशेमन तक

स्वानुभवकी कमीके कारण भी कभी-कभी ऐसी भूले हो जाती है कि अच्छे-अच्छे उस्ताद उन अस्वाभाविकताओको नही भाँप पाते। 'अहसन' माहरहरवी मिर्ज़ा 'दाग' के योग्य शिष्य थे। शिष्योकी डाक-द्वारा आयी हुई गजलोको अक्सर वे पढकर मिर्जा 'दाग' को सुनाते थे और जो इस्लाह उस्ताद फर्माते थे, लिखकर शिष्योको वापिस भिजवा देते थे। ऐसे दक्ष शार्गिदने जब अपना यह शेर इस्लाहके लिए

पेश किया—

किसी दिन बेख़ुदीमें जा पड़े थे उनके सीने पर
बस इतनी-सी ख़तापर हाथ कुचले उसने पत्थरसे

मिर्ज़ा दागके पास बैठी हुई तवाइफ शेर सुनकर मुस्करायी। अहसन तो बेचारे मौलाना और जाहिदे-खुश्क थे। इस मुस्कानका रहस्य समझना उनकी समझके बाहर था, किन्तु मिर्ज़ा दाग-जैसा स्वानुभवी भाँप गया। फर्माया बेख़ुदीमे एक ही हाथ सीनेपर पड़ना मुमकिन है। दोनो हाथ तो अनजानेमे नही जान-बूझकर ही पडते है। शेर यूँ बना लो—

किसी दिन बेख़ुदीमें जा पड़ा था उनके सीने पर
बस इतनी-सी ख़तापर हाथ कुचला उसने पत्थरसे

मिर्ज़ा सुलेमान जाह 'अजुम' उस्ताद हैदरअली तबातबाई 'नज्म' से अपनी गजलपर इस्लाह लेकर जा रहे थे कि रास्तेमे नवाब अख़्तर महल बेगमको सलाम करनेके लिए उनके दौलतखानेपर चले गये। बेगम साहिबा शाइरा तो न थी, हाँ सुख़न-फहम ज़रूर थी। ताज़ा गजल सुनानेकी फर्माइशपर अपनी इस्लाहशुदा गज़ल पढनी शुरू की। जब यह शेर पढ़ा—

दम मेरा निकला तेरे वादेके साथ
तेरी घबरायी हुई हाँ की तरह

तो बेगमने मुस्कराते हुए पूछा—क्या उसने घबराकर कहा था कि 'हाँ'? फिर फर्माया यूँ पढिए—

तेरी शर्मायी हुई हाँ की तरह

उस्तादने इस्लाह तो दे दी, परन्तु नारी सुलभ इस अदाका अनुभव न होनेसे मात खा गये। शेरो-शाइरी ऐसा असीम सागर है, जिसमे

अच्छे-अच्छे तैराक गोते खाजाते है। 'हातिम' अपने ज़मानेमें बहुत अच्छा उस्तादाना मर्त्तबा रखते थे। अपने कुछ शागिर्दोंके साथ बैठे हुए थे। फ़र्माइशपर अपनी गजलका यह मतला पढ़ा—

सरको पटका है कभू, सीना कभू कूटा है
रात हम हिज्रकी दौलतसे मज़ा लूटा है

शागिर्दोंमे मियाँ सआदत यार ख़ाँ 'रगी' भी बैठे हुए थे। उन्होने बा-अदब अर्ज किया—"उस्ताद मत्ला तो बहुत अच्छा है, लेकिन दूसरे मिसरेमें जरा-सी तरमीमकी जरूरत है।" उस्तादने पूछा—वोह क्या ? रंगीने हाथ बाँधकर अर्ज़ की "मेरी नाकिस रायमे दूसरा मिसरा यूँ रहना चाहिए—

हमने शबे-हिज्रकी दौलतसे मज़ा लूटा है

उस्तादने गौर किया तो मालूम हुआ कि 'हम लूटा है' अशुद्ध है। 'हमने लूटा है' कहना चाहिए था। उस्तादने 'रंगी' की इस इस्लाहको बेतकल्लुफ क़ुबूल कर लिया और सबके सामने रगींकी सराहना भी की।

उस्तादका कर्तव्य

१ शिष्यके मौलिक विचारोंमे परिवर्त्तन न करके उसके अशआरके शब्दार्थके दोषोको दूर करनेके लिए और ख़ूबी पैदा करनेके लिए उपयुक्त शब्दोका परिवर्त्तन-परिवर्द्धन करना चाहिए।

२. यदि शिष्यके विचार अस्वाभाविक, निम्नकोटिके है और शेरकी बन्दिश भी ढीली है तो वह शेर काट देना चाहिए और शिष्यको उसके स्थानपर उपयुक्त शेर कहनेका आदेश देना चाहिए। ताकि उसके अभ्यासमे वृद्धि हो सके।

३ शेरमे सशोधन करनेपर उसकी वजह शिष्यको समझा देनी

चाहिए ताकि भविष्यमे वह उस भूलसे सावधान रहे।

४. किसी भी स्थितिमे शिष्यके लिए अपना शेर नही देना चाहिए। क्योकि इस आदतसे शिष्यकी उन्नति रुक जाती है और वह परमुखापेक्षी हो जाता है।

५ इस्लाह देते समय निम्नलिखित नुक्तोका खयाल रखना चाहिए—

(क) शेरका आभ्यन्तरिक और वाह्य रूप सुन्दर है या नही ?
(ख) वह शब्दार्थकी दृष्टिसे एव भाषा-सौन्दर्यसे रिक्त तो नही ?
(ग) शेरकी बन्दिश चुश्त एवं आकर्षक है या भोण्डी ?
(घ) शाइरीके व्याकरण सम्बन्धी कोई त्रुटि तो नही ?
(ङ) काफिया और रदीफका सही इस्तेमाल हुआ है या नही ? शेरियत पैदा हो सकी है या सिर्फ शब्दोका गोरखधन्धा है ?

शिष्योंके लिए ध्यान देने योग्य

१ क्लिष्ट शब्दो एव व्यर्थकी फार्सीयतसे परहेज करना चाहिए।

इक मुनज्जिमने कहा है कि यह साल अच्छा है

इसकी जगह "एक नजूमीने कहा है कि यह साल अच्छा है" कहना आम फहम है। यहाँ सरल एवं चित्ताकर्षक अशआरके चन्द नमूने दिये जा रहे है—

मीर—इक निगाह करके उसने मोल लिया
　　बिक गये आह, हम भी क्या सस्ते

दर्द—जगमें आकर इधर-उधर देखा
　　तू ही आया नजर जिधर देखा

मुसहफ़ी—हैरान है किसका ? जो समन्दर
मुद्दतसे रुका हुआ खड़ा है

नासिख़—ज़िन्दगी ज़िन्दादिलीका नाम है
मुर्दा दिल ख़ाक जिया करते हैं

आतिश—आईना देखनेका गुज़रता नहीं ख़याल
अपनी ख़बर नहीं उन्हें मेरी ख़बर कहाँ ?

ग़ालिब—घर जब बना लिया तेरे दर पै कहे बग़ैर
जानेगा अब भी तू न मेरा घर कहे बग़ैर

मोमिन—तुम मेरे पास होते हो गोया
जब कोई दूसरा नहीं होता

ज़ौक़—उसने जब माल बहुत रद्दो-बदलमें मारा
हमने दिल अपना उठा अपनी बग़लमें मारा

जलाल लखनवी—फिर हम उनके रूठ जानेपर फ़िदा होने लगे
फिर हमें प्यार आ गया, जब वे ख़फा होने लगे

अमीर मीनाई—इक किनारे पड़ा हुआ है 'अमीर'
कुछ तुम्हारा ग़रीब लेता है ?

हसरत मोहानी—नहीं आती तो याद उनकी महीनों तक नहीं आती
मगर जब याद आते हैं तो अक्सर याद आते हैं

साक़िब लखनवी—लूटने वाले हमारी नींदके
रात भर किस चैनसे सोते रहे ?

आर्ज़ू लखनवी—भरी आते ही किसने चुपके-से सिसकी ?
बदलने लगा करवटें मरने वाला

असर लखनवी—एक बात भला पूछें "किस तरह मनाओगे ?
जैसे कोई रूठा हो और तुमको मनाना है"

जिगर मुरादाबादी—सब पै तू महर्बान है प्यारे
कुछ हमारा भी ध्यान है प्यारे ?

रज़ा लखनवी— छुप नहीं सकती चाहकी चितवन
रोज़ कहाँ तक बात बनायें

सिराज लखनवी— परोंसे मुँहको छुपाके क़फ़समें बैठा हूँ
यह शर्म है कि न पहचान ले बहार मुझे

फ़िराक़ गोरखपुरी—उसे भूलिए भी तो क्या भूलिए
हज़ारों तरह याद आ जाये है

आसान और बोलचालकी भाषामे शेर कहना सर्वसाधारणके लिए विशेष लुभावने होते है।

२. मतरूक (उर्दू से निष्कासित) शब्दोका प्रयोग वर्जनीय है। ऐसे शब्दोकी सूची खासी लम्बी-चौड़ी है और उत्तरोत्तर बढती जाती है। यहाँ बतौर नमूना चन्द शब्द दिये जा रहे हैं—

मतरूक	जाइज़	मतरूक	जाइज़
पर	मगर	तूँ	तू
याँ, वाँ	यहाँ, वहाँ	तनक	ज़रा
गर	अगर	कने	पास
ते	तूने	बास	बू
नित	हमेशा	मैला	गन्दा
खोलियाँ	खोला	जिन्होनेके	जिनके
टुक	ज़रा	पवन	हवा
तिधर	उधर	मुखडा	मुँह
मत, ने	न, नही	तईं	लिए
लोहू	लहू, खून	जूँ	ज्यूँ

ओर	तरफ	उन्नने	उसने
बुलबुलॉ	बुलबुल	ठौर	जगह
सेती	से	तिसपै	उसपर
कबलग	कबतक	कभू	कभी

३ सरल एवं लालित्यपूर्ण भाषाके साथ ही शेरकी सुरुचिपूर्ण गठन भी अत्यन्त आवश्यक है। भाव और शब्द कितने ही सुन्दर हो; शेरकी बन्दिश चुश्त नही तो वह शेर बे नमक है। शेर कहनेका कमाल तो यह होना चाहिए कि उसे गद्य रूपमे परिणत किया जाय तो एक भी शब्द इधर-से-उधर न किया जा सके। मिर्जा दागका यह शेर इस कसौटीपर खरा उतरता है—

रुख़े-रौशनके आगे शमअ़ रखकर वे यह कहते है
उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है

चार शेर इसी किस्मके और दिये जा रहे है—

असर लखनवी— हमने रो-रोके रात काटी हैं
आँसुओंपर यह रंग तब आया

अज्ञात— थमते-थमते थमेंगे आँसू
रोना है कुछ हँसी नहीं है

फ़ैज़ अहमद— तुम तो ग़म देके भूल जाते हो
मुझको अहसाँका पास रहता है

आर्ज़ू लखनवी—कहके यह कुछ और कहा न गया
कि "हमें आपसे शिकायत है"

४. कर्त्ता, कर्म, क्रियाको यथास्थान न रखकर इधर-उधर कर देना भी उचित नहीं।

ज़िब्ह वोह करता है पर, चाहिए ऐ मुर्ग़े-दिल !
दम फड़क जाये तड़पना देखकर सैयादका

शाइरका आशय तो ये है कि—सैयाद मुर्गे-दिलका वध कर रहा है। अत उसे इस ढंगसे तडपना चाहिए कि सैयादका दम भी देखकर फड़क उठे। उसका भी दिल लरज जाये, किन्तु शेरको पढनेसे ख्याल यह होता है कि 'सैयादका तडपना देखकर मुर्गे-दिलका दम फडक जाय।' इस भ्रमका कारण ये है कि दम और सैयादके मध्यमे शाइरने चार शब्दोकी दीवार खड़ी कर दी है। 'दम सैयादका' या 'सैयादका दम' कहा जाता और 'मुर्गे-दिलका तडपना देखकर' कहा जाता तो यह भ्रम न होता। इसी ढगका एक और उदाहरण—

डाली गयी जो फ़स्ले-ख़िज़ाँमें शजरसे टूट

इस मिसरेमे 'डाली' भूतकालीन क्रियाके अर्थमे प्रयुक्त नही हुई है, अपितु 'डाली' का अर्थ यहाँ पेडकी डालीसे है, किन्तु भ्रम 'नीव डाली' या किसी वस्तुके डालनेका होता है। उक्त मिसरेमे 'टूट गयी' को गयी टूट बाँधा है और 'डाली टूट गयी' को दो भागोमे विभक्त करके डाली गयी और टूटके दरम्यान छह शब्द रख दिये गये है। इस प्रकार शब्दोके उलट-फेरसे शाइरको बचना चाहिए। 'डाली' पर एक अच्छा शेर याद आया—

मुझे खटका हुआ था जब बिनाए-काबा[1] डाली थी
कि यह धोकेमें डालेगी बहुत गब्रो-मुसलमाँ[2]को

५. गजलके मिज़ाजके लिए कौन शब्द उचित है और कौन अनुचित इसका पूर्णरूपेण ज्ञान आवश्यक है। बहुत-से शब्द—जो कसीदो, मर्सियों, मसनवियो, नज्मों आदिके लिए तो उपयुक्त होते है, किन्तु उन सबका प्रयोग गजलमे नही किया जा सकता। गज़ल एक बहुत कोमल

१. काबेकी नीव। २ अग्निपूजकों और मुसलमानोंको।

छुई-मुई-सी कला है, जो तनिक-सी असावधानी बरतनेसे कुम्हला जाती है। इसकी साफ़-सुथरी, मँजी-धुली, नोक-पलकसे दुरुस्त, सजी सँवरी अपनी भाषा है। इसकी अपनी टकसाली, बा-मुहावरा जबान है। यह करख़्त, क्लिष्ट, भारी बोझिल शब्दोको सहन नही करती। बाजारी जबान, अश्लील फ़ब्तियाँ, निम्नकोटिके मुहावरे गजलको पसन्द नही। मसलन 'नादानी' लफ्ज तो गज़लके शेरमें इस्तेमाल हो सकता है, किन्तु उसकी जगह 'हिमाकत' शब्द नही रखा जा सकता।

६. शुतुरगुर्बापन भी शाइरीका एक दोष है। जिसमें पहले मिसरेमे एकवचन हो, और उसी शब्दका दूसरे मिसरेमे बहुवचन। बकौले-दाग—

एक मिसरे में हो तू और दूसरे मिसरे में तुम
यह शुतुर गुर्बा हुआ मैंने इसे तर्क किया

७. रकाकत (तुच्छता), इब्तिजाल (फूहड़पन) और जमके पहलू (अश्लील शब्दोका व्यवहार) भी गजलके लिए अयोग्य है। बाज़ारी ज़बान, बाजारी मुहावरे और बाज़ारी अल्फाज़के इस्तेमालसे भी उक्त तीनों दोष उत्पन्न हो जाते है। एक सज्जन रातको देरसे घर पहुंचे तो उनकी श्रीमतीजी वोली—'तुम्हारा दूध बिल्ली पी गयी है तुम मेरा पी लो।' पति महाशयने आशय समझकर भी व्यंग्य किया—'क्या आज बच्चोंने नहीं पिया जो मुझे पिलाना चाहती हो।' श्रीमतीजी झेपते हुए बोली—'तुम बडे वो हो, हर बातमें मजाक तलाश कर लेते हो।'

एक महिला प्रथम श्रेणीके कूयेमे अपनी बर्थपर आसीन थी। दूसरी बर्थपर उनके पतिदेव थे। वे किसी कामसे प्लेटफॉर्मपर गये हुए थे कि एक यात्री डिब्बेमें प्रवेश करने लगा तो महिला जल्दीसे बोल उठी—"यह बर्थ कण्ट्रोल है।" इस तरहकी उपहासास्पद भूलें अक्सर होती रहती है। तेरी और तुम्हारी शब्दके व्यवहारमे सावधानी न बरतनेसे

भी जमका पहलू निकल आता है। बाज़ शव्दोकी परस्पर समीपतासे भी यह दोष आ जाता है। मसलन—'इस' और 'हाल'को समीप रखा जाये तो इसहालकी आवाज पैदा होती है और इसहालका अर्थ 'अतिसार' है। चू और दामन शब्द भी एक जगह नही रखने चाहिएँ।

मैंने पर्दा जो उठाया तो कयामत देखी

यह मिसरा एक मशहूर शाइरका है। जबान अच्छी, वन्दिश अच्छी, अल्फ़ाज़का चुनाव और रख-रखाव सव मुनासिव। मगर फिर भी शव्दार्थकी अस्पष्ट सूरतने ज़मका पहलू पैदा कर दिया और मिसरा उपहासास्पद हो गया।

८ उपमाओ, अलंकारोका प्रयोग वहुत सावधानीसे करना चाहिए। इस वातका ध्यान रखना चाहिए कि उपमाओ आदिके प्रयोगसे शेरका स्वाभाविक रूप तो विकृत नही हो रहा है। जैसे कोई चितेरा अपना हस्त-कौशल दिखानेके लोभमे गुलावकी पत्तियोपर वेल-वूटे वनाये तो फूलका प्राकृतिक रूप नष्ट हो जायेगा। उसी प्रकार उपमाओ-अलंकारोकी व्यर्थकी भरमार भी शेरके सौन्दर्यको विकृत कर देती है। इसी प्रकार मनमानी गलत-सलत उपमाएँ भी वर्जनीय हैं। मसलन—हँसती हुई खिज़ाँपर रोना, रोती हुई वहारपर हँसना, सीमगूँ खामोशियाँ, तड़पती हुई मदहोशियाँ। यासकी जुल्मतोमे उम्मीदकी रौशनी।' इसी प्रकारके वहुत-से नियम-उपनियम हैं। जिन सवका उल्लेख स्थानाभावके कारण नही किया जा सका है।[1]

० ० ०

उर्दू-शाइरीमे इस्लाहका रिवाज़ तो पुराना है, लेकिन १९१८ ई०

---

१. प्रामाणिकताके लिए हमने 'शिष्योंके कर्तव्य' शीर्षकमें वावाए-उर्दू हज़रत जोश मलसियानी-जैसे सिद्धहस्त विद्वान्‌की कृति 'आईनए-इस्लाह'के १५-२० वाक्योंका उपयोग किया है और पचाकर अपनी शैलीमें व्यक्त किया है। उदाहरणमें पाँच अशआर भी दिये गये हैं।

से पूर्व इस्लाहोंका संकलन किसी शाइर या अदीबने नही किया था। इस तरफ हज़रत 'सफ़दर' मिर्ज़ापुरीका ध्यान आकर्षित हुआ। मीर, दर्द, मुसहफ़ी, आतिश, नासिख़, ग़ालिब, मोमिन, जौक, दाग़, असीर, तस्लीम, तस्नीम, अमीर मीनाई-जैसे रौशन दमाग उस्ताद भावी पीढ़ीको डगर दिखाकर अन्तर्ध्यान हो चुके थे। जिन शाइरोने उनकी आँखे देखी थी। जूतियोमें बैठकर कुछ सीखा था और अपनी शाइरीका चिराग उनकी ज्योतिसे रौशन किया था और स्वयं उस्तादीके मर्त्तबेको पहुँच गये थे। वे भी प्रातःकालीन दीप बने टिमटिमा रहे थे। कब कौन-सा चिराग अपनी लौ खो बैठे; यही अन्देशा 'सफ़दर' मिर्ज़ापुरीको सताने लगा।

उस्ताद शाइरोंका कलाम तो उनके दीवानोंमें सुगमतापूर्वक मिल जायगा, किन्तु उन-द्वारा ली-दी गयी इस्लाहें फिर कहाँ और क्योकर नसीब होंगी ? शाइरका वास्तविक जौहर तो इस्लाहों ही से प्रकट होता है। अतः तनिक-सी चूकसे उर्दू-अदबका ख़ज़ाना एक अमूल्य निधिसे रिक्त रह जायगा।

अब पछताये कहा होत है जब चिड़िया चुग गयीं खेत।

अतः सफदर मिर्ज़ापुरी इस्लाहें संकलन करनेके लिए दीवानावार लखनऊके गली-कूचोमे उस्तादोके दरोंकी खाक छानने लगे। शुरू-शुरूमे कुछने यह कहकर उन्हें टरकाया—"हमारे कलामपर उस्तादने इस्लाह देनेकी ज़रूरत ही महसूस नही की और हमने अपने शागिर्दोको दी गयी इस्लाहोंकी नकल नही रक्खी।" कुछने यह कहकर चलता किया—"हमें जो इस्लाहें दी गयी थी, उन्हे हमने अपनी ब्याज (कविता सकलन) में नोट करनेके बाद जाया कर दिया। यह मालूम होता कि कोई अदीब इस्लाहोंको भी शाया (प्रकाशित) करेगा तो सहेजकर रख लेते।"

लेकिन 'सफदर' निराश न हुए। वे अपनी धुन के पक्के थे। तीन वर्ष

तक लगातार प्रयास करनेपर १९१८ ई०में इस्लाहोका प्रथम संकलन और १९२८ ई० मे द्वितीय सकलन प्रकाशित करानेमे कामयाब हो ही गये।[1] सफदर साहबने अपने उन कई दर्जन मित्रों, शाइरो अदीबोका सम्मान पूर्वक उल्लेख किया है, जिन हितैषी महानुभावने इस्लाहे भिजवायी या संकलन करनेमे सहयोग दिया। यदि किसीने एक शेरकी इस्लाह भी भिजवायी तो अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक शेरके साथ उसके नामका भी उल्लेख किया है।

हमने 'सफदर' साहबके इस इस्लाहोद्यानसे १५० शेरोकी इस्लाहोका चयन करके गुलदस्ता बनाया है।[2] इसमे ख्यातिप्राप्त प्रामाणिक उस्तादोकी सुरुचिपूर्ण इस्लाहोके चयनका प्रयास किया गया है। साधारण कोटिकी, एवं शिष्यकी प्रारम्भिक अवस्थाकी और एक ही रंगकी कई-कई इस्लाहोके निर्वाचनसे परहेज़ रखा गया है। जिन-जिन उस्तादोकी इस्लाहोका चयन सफदर साहबके मुश्शातए सुख़नसे किया गया है, उन-उन उस्तादोके अन्तमे पादटिप्पणियोमे पुस्तकका उल्लेख पृष्ठ सहित प्रेस-कापीमे किया गया था, किन्तु प्रूफ आते ही महसूस हुआ कि केवल पाद टिप्पणीमे उल्लेख कर देनेसे न उनके श्रमका मूल्याकन हो सकेगा और न अपनी कृतज्ञता प्रकट हो सकेगी। इस सपूत अदीबका आभार तो अलगसे मानना चाहिए। यह महसूस होते ही फुटनोटसे मुश्शातए-सुख़नके हवाले निकाल दिये गये।

सफदर साहबके अतिरिक्त पृष्ठ १२० से २२८ तककी इस्लाहोकी माला जिन उस्तादोकी वाटिकाओसे गूँथी गयी है। उनका उल्लेख

---

१ इन सकलनोंके नाम है—"मुश्शातए-सुख़न।" १८–२२ आकारके अठपेजी साइज़। पहला हिस्सा पृ० १५२। ३७ उस्तादोंकी इस्लाहोंका संकलन। प्रकाशक—सिद्दीक़ बुकडिपो लखनऊ। दूसरा हिस्सा पृष्ठ २६२। ६२ उस्तादोंकी इस्लाहें सकलित। प्रकाशक—ताजराने-कुतुब लाहौर।

२. प्रस्तुत पुस्तक पृष्ठ ८ से ७४ और ८० से ११९ तकके उस्तादोंकी इस्लाहें।

सम्मानपूर्वक यथास्थान किया गया है। इस्लाह देनेकी वजूहात स्वयं उस्तादोंने, शागिर्दोंने और सफदर साहबने बयान की है। हमने उन्ही बयानोके आधारपर उन्हें सरल भाषा एवं भावोंका परिधान पहनाकर प्रस्तुत किया है। व्याकरण और छन्दशास्त्र सम्बन्धी बारीकियोंको सुगम बनानेका प्रयास किया है। लम्बे-लम्बे वाक्योंको संक्षिप्त किया है और उस्तादोकी इस्लाहोंकी प्रशंसा प्रत्येक शेरके साथ प्रायः एक ही तरहकी या आवश्यकतासे अधिक प्रशंसाके उल्लेख करनेमे बहुत कंजूसी बरती गयी है।

मुझ तुच्छ बुद्धिहीनने 'उस्तादाना कमाल' प्रस्तुत करनेकी धृष्टता की है। न जाने अज्ञानवश कितनी भूले हुई होगी। अधिकारी गुरुजनो-के द्वारा भूल सुझाये जानेपर अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा। इसके सम्पादनमे प्रमाद एवं असावधानीको मैंने पास नही फटकने दिया है। मुझसे जो बन पड़ा वह प्रस्तुत है, अब हिन्दी-संसारपर निर्भर है कि वह इसे किस प्रकार अपनाता है। बकौल शख्से—

ख़ुदाके हाथ है बिकना न बिकना मैका ऐ साक़ी !
बराबर मस्जिदे-जामअ़के हमने तो दुकाँ रख दी

डालमियानगर (बिहार)
४—११—१९६६ ई०

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मेरे दोस्तो ! मेरे हमदमो !! हो खामोश किस लिए ? कुछ कहो
मुझे दादे-बेहुनरी ही दो, जो मजाले-क़द्रे-हुनर न हो

—एजाज़ सिद्दीक़ी

उस्तादाना कमाल

यूँ लाये वाँ से हम दिले-सद्‌पारः ढूँढकर
पाया पड़ा जहाँ कोई टुकड़ा उठा लिया

—अज्ञात

उस्तादाना कमाल

उर्दू-शाइरीमें इस्लाह (संशोधन) का बहुत अधिक प्रचलन रहा है। शिष्य चाहे बादशाह या नवाब, अथवा कितना ही प्रतिष्ठित व्यक्ति रहा हो, वह अपने दरिद्र अथवा साधारण व्यक्तित्वके उस्तादको भी बहुत अधिक आदर और सम्मान देता था। बहादुरशाह ज़फर, नवाब आसफ़ुद्दौला, वाजिद अलीशाह, नवाब हैदराबाद, नवाब रामपुर आदि अपने यहाँ रहनेवाले वैतनिक उस्तादोका भी उसी तरह अदब करते थे, जिस तरह एक साधारण व्यक्ति-द्वारा किसी महान् विद्वान् या श्रद्धेय धर्माचार्यका किया जाता है। सर इकबाल-जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त शाइर अपने उस्ताद मिर्ज़ा 'दाग' का, जोश मलीहाबादी-जैसे शाइरे-इन्क़िलाब अपने उस्ताद 'अजीज़' लखनवीका उसी तरह आदर और सत्कार करते थे, जैसे सस्कृत पाठशालाके विद्यार्थी अपने गुरुजनोकी श्रद्धा-भक्ति करते है।

अक्सर यह भी हुआ है कि उस्ताद अच्छे चरित्रके नही हैं और उनके शिष्य माने हुए चरित्रवान् और सम्मानित व्यक्ति हुए हैं। फिर भी शिष्य सदैव नतमस्तक और श्रद्धालु बने रहे है। मिर्जा 'गालिब' शराब पीते थे और उनके शिष्य शम्सउल उलमा मौलाना 'हाली' बहुत परहेजगार व्यक्ति थे। उन्होने मिर्ज़ा 'गालिब' की सेवा-शुश्रूषाके अतिरिक्त 'यादगारे-गालिब' लिखकर उन्हे अमर कर दिया। शम्स-उल-उलमा मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद'के घरमें आग लगी तो वे अपने घरको जलता हुआ छोड़कर केवल अपने उस्ताद 'ज़ौक' का दीवान यह कहते हुए लेकर चल दिये कि "और चीजें तो फिर भी नसीब हो सकती है परन्तु उस्तादका यह कलाम कहाँ नसीब होगा ?"

शिष्य कितना ही सिद्धहस्त शाइर हो, वह अपने उस्तादको दिखाये बगैर न मुशाअ़रोमे कलाम पढता था, न किसी पत्र पत्रिकामे प्रकाशित कराता था। जबतक कि उस्ताद उसे इस्लाह (संशोधन) देनेसे मुक्त न कर दे। मुशाअ़रोमे उस्तादसे पहले शिष्य कलाम पढते थे और किसी वजहसे उस्ताद पहले पढ़ ले तो बादमे पढना शाइर धृष्टता समझते थे और संयोजकोके मिन्नत-खुशामद करनेपर भी नही पढते थे। उस्तादके अदबो-आदावका कितना लिहाज़ रखते थे, यह मिर्ज़ा दागके प्रसिद्ध शिष्य 'आगा शाइर किज़लबाश'की ज़बाने-मुबारकसे सुनिए :

"मै उस्तादकी खिदमतमे इस तरह हाजिर होता था, जैसे ग़ुलाम अपने आका (स्वामी) के सामने या गुनहगार हाकिमेवक्तके रूबरू लरजता-काँपता, थर्राता और कभी बजुज ज़रूरतके (आवश्यकताके अतिरिक्त) कोई कलमा मेरी ज़बानसे न निकलता। जो कुछ पूछना होता पूछा, जो पूछा वह अर्ज़ किया। बाकी वक्त खामोश, और यही हाल उस्तादका था। वे भी मुझे शेरकी निगाहसे देखते थे। मै हाजिर हुआ हूँ, कमरेमे कहकहे उड रहे है और जहाँ मैने अन्दर कदम रखा, लबे-फर्श पहुँचकर आदाब बजा लाया और सबसे फर्दतर बैठ गया। अब वही मुकाम इस तरह सुनसान और खामोश था, जैसे वहाँ कोई ज़ीरूह (प्राणी) नही। मेरी इस्लाह क्या होती थी, गोया जगेअज़ीम (महासमर) का एक अल्टीमेटम होता था। उधर हज़ार गोशबरआवाज़ (सैकडो सुननेवाले उपस्थित) इधर मै खौफसे लरज़ाँ और लब कुश्तए-मतालिब (ओठ मनकी बात कहनेमे असमर्थ)। उधर उस्तादको मामूलसे ज्यादा काविशे-मतलूब (आवश्यकतासे अधिक मतलबकी बात सुननकी जल्दी) त्यौरी चढी हुई है, एक भौ माथे तक खिचकर जा पहुँची है, और जितना बुलन्द-से-बुलन्द शेर होता था, बिगड़-बिगडकर फर्माते—'आगे चलो जी' और जहाँ जरा-सा भी सुकम (नुक्स) नजर आ गया बस बरस पडे, कयामत कर दी। 'यह क्या साहब यह क्या ? जरा फिर इनायत

कीजिए। माशा अल्लाह ! सुब्हान अल्लाह !! यह आपने कहा है' ? गरज जान छुडानी मुश्किल हो जाती। इस सरजनिस (मलामत, तम्बीह) और मुआसरीन (समकालीन अन्य शिष्यो) की मौजूदगीका इस दर्जा ख़ौफ होता था कि एक-एक मिसरेपर जान लगा देनी पड़ती थी। तब जाकर वे फ़र्माते थे कि 'आगे चलो, आगे चलो।' हाँ, अलबत्ता जिन मिसरोंपर मिसरा लगाना मेरे बसका रोग न होता, वह बेशक मै चुनकर ले जाता था और बाज औकात उन्हीकी इस्लाहमे उन्हे सख्त काविश करनी पड़ती थी, और उन्हीपर वे अक्सर मुनगज (अप्रसन्न) भी हो जाते थे। बार-बार पहलू बदलते। 'इधर तकिया लगाओ; फिर पढो; और फिर पढो; क्या मिसरा बका है ? क्या लग्व (व्यर्थ) वन्दिश है ? यह हमारे पास इस्लाह लेने थोडे ही आते हैं; यह तो हमारा इम्तहान लेने आते है साहब !'

बाहरके शागिर्दोंके कलामकी इस्लाह देनेकी सूरत इस तरह बयान करते है :

"आप पलंगड़ीपर लेटे है या गावतकियेसे लगे बैठे है। चारो तरफ तलामज: (शिष्यों)का झुरमुट है और एक साहब गज़लोका थब्बा (बण्डल) सामने रखे कलम हाथमे लिये एक-एक गजल पढते जाते है। हाज़रीन हर शेरको ग़ौरसे समाअ़त फर्माते (सुनते) है और मुनासिब मौकेपर अपनी-अपनी राय भी देते जाते है। अगर इस मशविरेसे उस्तादकी रायको भी इत्तफाक हो गया तो वही अल्फाज उस गजलमे बना दिये गये, वर्ना जो उस्तादने बतौर ख़ुदईमाँ फर्माया, बजिंस ही (हू-ब-हू) वोह उस मुकामपर जड दिया गया। इस तरह इस्लाहकी इस्लाह हो जाती थी और आपसके तबादलए-ख़यालातसे मालूमातका दायरा भी वसीअ़ हो जाता था[1]।"

मौलाना इफ्तख़ार आलम मारहरवी लिखते हैं—

"मिर्जा साहबका क़ायदा है कि अक्सर सुबह ७ बजेसे १० बजे तक

---

१. नक़्दो-नज़र, पृ० २१२–१३।

और शामके ५ बजेसे आठ-नौ बजे तक बशर्ते फुर्सते-तलामजा (शिष्यों) की गज़लोंपर इस्लाहके लिए भी कुछ वक्त निकालते है। वर्ना आमतौरसे यह वक्त तफरीहके लिए मखसूस है। कायदा यह है कि एक शख्स गज़ल सुनाता है। शेर सुनकर अच्छा हुआ तो 'हूँ' कर दिया और अगर इस्लाहकी ज़रूरत हुई तो कहा 'क्या'। पढनेवालेने दुवारा शेर पढा और मिर्ज़ा साहबने उसी वक्त अल्फ़ाज़को उलट-फेरकर या रद्दोबदल करके इस्लाह दे दी। इस्लाह दे देनेके बाद 'हूँ' कहते, इस आवाज़के साथ ही पढनेवाला दूसरा शेर पढता। एक गज़लकी इस्लाहमे अगर कोई उलझन पैदा न हो तो एक-दो मिनट फी शेरसे ज़्यादा वक्त सर्फ नही होता है। इस्लाह करते वक्त मिर्जा साहब अपना पूरा शेर या मिसरा कभी नही दिया करते। एक-आध लफ्जकी अगर गलती हुई है तो बनवा देते है। यह नही करते कि पूरा शेर या मिसरा बनवा दें। बल्कि पूरा मिसरा या शेर गलत होता है तो वह कलमज़द कर दिया जाता है। बहालते-मौजूदा यह तरीका मुकर्रर है कि मुझको या 'अहसन'को इस्लाहके लिए गज़ल दिया करते है। कभी-कभी हम लोग भी अपनी समझके मुताबिक़ कोई लफ्ज़ बता दिया करते है। जिसकी हमे इजाज़त है। अगर वह लफ़्ज़ अच्छा होता है तो बेतकल्लुफ उसे लिखा दिया करते है। इस मुआमलेमे मिर्जा साहब इतने फराख हौसला है कि जब कभी अपनी गज़ल कहते है, कोई लफ्ज़ खटकता है तो पूछते है। हम अदबकी वजहसे ज़बान बन्द रखते है। मगर वह उसपर ख़फा होते है और फर्माते है कि 'जब कोई लफ्ज़ खटके बेतकल्लुफ बता दो। मै फरिश्ता नही हूँ। इसान हूँ। मुमकिन है कि तुम्हारे खयालमें कोई अच्छा लफ्ज़ आ जाये।'

एक दफा ऐसा हुआ कि फसीह उललुगातके लिए अहसन मज़ाहिय अशआर कहलवा रहे थे। अहसनने अर्ज की कि हज़रत 'बातचीत' को नज़्म फर्मा दीजिए। अहसनका यह कहना था कि बे-इख्तियार मेरे मुँहसे निकला—

बातचीत उनसे अब नहीं होती

उस्तादने दूसरा मिसरा फ़ौरन फर्मा दिया और यूँ शेर हो गया।

हम भी कुछ कहते वह भी कुछ कहते
बातचीत उनसे अब नहीं होती

यह शेर अहसनने लिख लिया और यादगारे-दागके मसविदेपर भी दर्ज हो गया। लोग कुछ समझें मुझे उसकी परवा नहीं। मैं उनकी तबीयतका अन्दाज़ा करनेके लिए उसे ज़ाहिर करना चाहता और बताना चाहता हूँ कि वह किसी शख्सके नेक मशविरेको किस तरह कुबूल कर लिया करते थे[1]।"

१. बज़्मे-दाग़से।

मीर तक़ी मीर-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १७०९; मृत्यु १८०९]

मीर उर्दू-शाइरीके ख़ुदाए-सुख़न थे। उनकी शैलीका अनुकरण नासिख़, आतिश, गालिब, जौक आदि जैसे अनेक सिद्धहस्त शाइरोंने करना चाहा, किन्तु वोह बात नसीब न हुई।

न हुआ, पर न हुआ मीरका अन्दाज़ नसीब
'ज़ौक़' यारोंने बहुत ज़ोर ग़ज़लमें मारा

आप द्वारा दी गयी चन्द इस्लाहे यहाँ दी जा रही है .

मज़मून[1]—मेरे पैग़ामको तू ऐ क़ासिद!
कहियो सबसे उसे जुदा करके

मीर— मेरा पैग़ामे-वस्ल ....
....

चूँकि दूसरे मिसरेमे 'जुदा करके' था। अतः पहिले मिसरेमे मीरने केवल 'पैगामे-वस्ल' (मिलन-सन्देश) डालकर शेरको चमका दिया।

मज़मून—मजमूँ! तू शुक्र कर कि तेरा नाम सुन रक़ीब
ग़ुस्सेसे भूत हो गया, लेकिन जला तो है

मीर— ....तेरा इस्म..................
. ...

पहले मिसरेमें 'तेरा नाम' के एवज 'तेरा इस्म' बनाकर शेरको लतीफ बना दिया। साधारण व्यक्तिसे तो पूछ लिया जाता है कि आपका क्या

---

१. मियाँ शरफुद्दीन साहब 'मज़मून'।

नाम है, किन्तु विशिष्ट व्यक्तिसे पूछा जायेगा – "आपका इस्मशरीफ ?" 'इस्म'का अर्थ भी 'नाम' है, किन्तु इन दोनोमे वही अन्तर है, जो 'आइए' और 'पधारिए'मे है ।

[1]यकरंग—सच कहे जो कोई सो मारा जावे
रास्ती हैगी दारकी सूरत
मीर— हक़.......................................
....

मुहावरा है कि साँचको आँच नही, किन्तु सच कहनेमे बहुत जान-जोखिम है । सच्ची बात कहनेके कारण मंसूर, ईसा सूलीपर चढ़ाये गये । प्रह्लादको आगमे झोक दिया गया और न जाने कितनोंको आँखें निकलवानी पड़ी, हलाहल पीकर जान देनी पडी, असह्य यन्त्रणाएँ सहनी पड़ीं । इसी भावका द्योतक उक्त शेर है ।

'मीर' साहबने पहले मिसरेमे 'सच'के एवज़ 'हक़' शब्द डालकर शेरको बहुत बुलन्द बना दिया है । 'सच' और 'हक' यूँ तो समानार्थक है, किन्तु भावमे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है । सच्ची बात कह देनेसे महा अनर्थ भी होते देखे गये है । व्यक्तिविशेष ही नही, राष्ट्र एवं समाज भी खतरेमे पड़ते रहे है । गोपनीय बात सच होते हुए भी प्रकट करना राष्ट्र-द्रोह एवं सामाजिक अपराध है; किन्तु सचके बजाय हक – उचित बात – कहना साहसका कार्य है । हक बात कहनेसे किसी अन्यके अनिष्टकी आशंका नही, स्वयं अपनेपर आपत्तियोकी सम्भावना रहती है ।

दूसरे मिसरेमे 'हैगी' शब्द कानमे खटकता है, परन्तु उन दिनो यह शब्द प्रचलित था । वर्तमान कालमें भी दिल्लीके आसपासके इलाक़ोमे 'है' या 'होगी'के एवजमें 'हैगी' शब्द प्रयुक्त होता है ।

---

१. मुस्तफ़ा ख़ाँ साहब 'यकरंग' ।

सज्जाद— हिज्रे-शीरीं में क्योंकि काटेगा
　　　　कोहकन यह पहाड़-सी रातें

मीर— किस तरह कोहकन पै गुज़रेंगी
　　　　हिज्रकी··· ··· ·········· ·· ····

सज्जादके पहले मिसरेमे 'क्यो कर'के बजाय 'क्योंकि' गैरफसीह था। साथ ही पहाड-सी रातें काटनेसे ध्वनित होता था कि फरहाद तेसा लेकर हिज्रकी पहाड़ी रातपर चढकर उसे काटेगा। लेकिन मीर साहबने 'किस तरह कोहकन पै गुजरेगो' बनाकर चित्र-सा खीच दिया है कि बेचारा विरही कोहकन न जाने कैसे हिज्रकी पहाड-सी रातें अपनेपर गुजारेगा। पहाड़-सी रातोको काटनेमे और उनको अपनेपरसे गुज़र जानेमे उतना ही अन्तर है, जितना पागल हाथीके सवारमे और हाथीके पाँव तले आये हुएमें होता है।

हातिम[1]— हाय बेदर्द से मिला क्यों था
　　　　आगे आया मेरे किया मेरा

मिसरेमे या वाक्यमे कोई ऐसा शब्द प्रयुक्त करना, जिसमे जम (अश्लीलता) का पहलू निकले, उर्दू-साहित्यमे त्याज्य है। फिर भी शाइरो एव अदीबोसे भूल हो ही जाती है। उक्त शेरके पहले मिसरेमे 'मिला' शब्दसे अश्लीलता प्रकट होती है। 'मिला' शब्द बाज़ारी जबानमे सम्भोगके अर्थोंमे भी आता है। जैसे 'मै उस वेश्यासे मिलता हूँ या मिला था'।

'मीर' अपनी तुनकमिजाजीके लिए मशहूर थे। भला वे कब ऐसी भूल बरदाश्त कर सकते थे। तुरन्त व्यंग्यात्मक स्वरमे फ़र्माया – "भई अगर मै कहता तो यह शेर यूँ कहता .

---

१. शैख़ मुहम्मद साहब 'हातिम'।

मुब्तिला आतशकरों हूँ अब मैं
आगे आया मेरे किया मेरा

शेर सुनकर 'हातिम' पानी-पानी हो गये।

[1]यक़ीन— मजनूँकी .खुशनसीबी करती है दाग़ मुझको
क्या ऐश कर गया है ज़ालिम दिवानापनमें

मीर— ....ख़ुशमआ़शी.................. ....
....

'ख़ुशनसीबी'के मायने है – '.खुशकिस्मती' (सौभाग्य) और '.खुश-मआ़शी'का अर्थ है – अच्छी कमाईसे जीवन बिताना, नेकचलनी। .खुश-नसीबी और .खुशमआ़शीमे वही अन्तर है जो भाग्य और कर्ममे है। भाग्यके बलपर ऐश करना तो कोई पुरुषार्थ नही : अपने कर्म (श्रम) से ऐश करना ही वास्तवमे काहिलोके लिए जलन (दाग) है।

[2]ख़ाकसार—ख़ाकसार उसकी तू आँखोंके कहे मत लगियो
मुझको इन ख़ानाख़राबों ही ने बीमार किया

मीर— ...., ...
....गिरफ़्तार .. ....

मीरने बीमारके बदले केवल 'गिरफ्तार' शब्द बना दिया है। अब इस तनिक-से हेर-फेरसे देखिए, शेरमे क्या .खूबी आ गयी है। आँखें प्रारम्भमे गिरफ्तार करती है। इस गिरफ्तारीके बाद ही इश्क़की अन्य यातनाएँ भोगनी पड़ती है।

---

१. इनआ़म अल्लाहख़ाँ साहब 'यक़ीन'। २ मुहम्मद यार 'खाकसार'।

मुसहफ़ी-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १७५१; मृत्यु १८२४ ई०]

शैख़ गुलाम हमदानी 'मुसहफी' मुरादाबाद निवासी थे। लेकिन जवानीमे दिल्ली चले गये थे। वही रहकर शाइरीमे उस्तादाना मर्त्तबा हासिल किया। आर्थिक परेशानियोके कारण आप लखनऊ चले गये थे। वहाँ इंशा और जुरअत-जैसे अखाड़ेबाज शाइरोसे मोर्चा लेते-लेते जीवन दूभर हो गया। आपके आतिश, जमीर, ख़लीक, असीर आदि जैसे नामवर शागिर्द थे, जिन्होने आगे चलकर स्वयं उस्तादाना मर्त्तबा पाया। आपने अपने आठ दीवान, दो तजकरे उर्दू शाइरोके, एक तजकरा फार्सी शाइरोका स्मृति स्वरूप छोडे है। यहाँ आप द्वारा दी गयी चन्द इस्लाहे दी जा रही है—

असीर[1]—मै वो बुलबुल हूँ, मेरे वास्ते ऐसी ज़मी पकड़ी
कि तूदः बन गया सैयाद दीवारे-गुलिस्ताँका

मुसहफ़ी—......................मेरी घातमें......................
कि पुश्तः..

शाइरका आशय था कि बुलबुलको पकड़नेके लिए अहेरी ऐसा उपयुक्त स्थान चुनकर बैठा कि बचनेका कोई उपाय नही रहा। गुलिस्ताँके हर तरफ दीवार-सी थी। उस्तादने पहले मिसरेमे 'वास्ते' के एवज़ 'घातमे' और दूसरे मिसरेमे 'तूदः' (मिट्टीका ढेर) के बजाय 'पुश्तः' (दीवार) बनाकर शेरको चमका दिया है।

---

१. मुंशी सैय्यद मुजफ्फर अली खाँ 'असीर' लखनवी।

असीर— नहर अश्कोंकी शबे-हिज्रमें जारी रखना
आबरू दीदए-तर ! आज हमारी रखना

मुसहफ़ी— .... 'सिवा बहरसे ....
....

उस्तादने ऊले मिसरेके 'शबे-हिज्र'को निकालकर 'सिवा बहरसे' (समुद्रसे भी अधिक वेगगामी) बना दिया है। रोनेके लिए शबे-हिज्रकी कैद क्या ? प्यारेके मिलनपर भी तो आँसू उमड आते हैं। उसके समक्ष अपनी विरहजन्य व्यथाओके मौन प्रदर्शनके लिए भी तो अश्रुधाराकी आवश्यकता पड़ती है। और प्रेमीके आँसुओके वेगमे जितनी अधिक तीव्रता होगी, उतना ही अधिक वह प्यारका पात्र समझा जायगा। आँसू खारी होते है, उस्तादने वहर (समुद्र) शब्दसे शेरका यह दोष भो दूर कर दिया।

असीर—दख़्ल अग़ियारका अब सहने-गुलिस्ताँमें नहीं
पाँव कुछ सोचके, ओ, बादे-बहारी ! रखना

मुसहफ़ी— दख़्ले-अग़ियार नहीं बज़्मे-गुलो-बुलबुल में
....

असीरने अगियार शब्द तो प्रयुक्त किया, किन्तु उसके लिए लाजिमी 'बज्म' शब्द न डाल सके। अगियारका स्थान तो बज़्मे-यार ही है। उसीकी शह पाकर माशूक आशिकोंका अपमान करते आये है। कभी अगियारके संकेतपर माशूक, आशिकको बज़्मसे निकलवा देते है, कभी आशिक़की उपस्थितिमे ही अगियारके साथ सुरापान करते है। अठखेलियाँ करते है और बेचारे आशिक कलेजेपर पत्थर रखकर सब कुछ सहन करते है।

इसी लखनवी शैलीके अनुसार उस्तादने ऊले मिसरेमे बज़्म शब्द बनाया है। सहने-गुलिस्ताँको बज़्मे-गुलो-बुलबुल कहना उस्तादाना कमाल है।

असीर—जुदाई कूए-जानाँकी हुई वजहे-अलम हमको
फ़िराके-बाग़े-जन्नत किस क़दर था शाक़ आदमको

मुसहफ़ी— . .. .. 'रुलाती है वजा हमको
....

अल्लाह मियाँने आदम और हव्वाको वर्जित फल खानेके अपराधमे अपने बागे-जन्नतसे निकाल दिया था। इसी इस्लामी विश्वासके अनुसार उक्त शेर कहा गया है। उस्तादने 'हुई वजहे-अलम' के स्थानपर 'रुलाती है वजा' का नगीना जड दिया है। अक्सर देखा गया है कि विरह-व्यथामे, दु:ख-शोकमें आँखोसे बरबस आँसू निकल पड़ते हैं।

आतिश[1]—बन्द:नवाज़ तुझ-सा कोई दूसरा नहीं
रंजूरका अनीस है, हमदम अलीलका

मुसहफ़ी—आजिज़ नवाज़ ....
. ... ..

उस्तादने ऊले मिसरेके 'बन्द.नवाज' को 'आजिज-नवाज' बनाया है। केवल एक शब्दके परिवर्त्तनसे शेर बहुत बुलन्द हो गया है। आतिशका सानी मिसरा "रजूरका अनीस है (दुखितका सखा है), हमदम अलीलका (रुग्णोके दु:ख-दर्दका साथी) है। ऐसे सहायकके लिए बन्द नवाज़ (भक्तवत्सल) कहनेकी अपेक्षा आजिज-नवाज (असहायोका सहायक) कहना अधिक उपयुक्त है।

आतिश—गुबारे-राह होकर चश्मे-ईसाँमें महल पाया
निहाले-खाकसारी को लगाकर हमने फल पाया

मुसहफ़ी—' . . ... . 'चश्मे-मर्दुममें...... .. ..
. ...

---

१. ख्वाजा हैदरअली 'आतिश'।

मुसहफीने ऊले मिसरेमे इंसाँके बजाय मर्दुम रखा है। चश्मे-इंसाँ भी उपयुक्त था, किन्तु "चश्मे-मर्दुम" मुहावरा है, इसीलिए यह परिवर्त्तन किया है।

आतिश फर्माते है—हमने अपनेको मानवोकी चरण-धूल बनाया तभी उनकी नज़रोंमे स्थान पा सके। नम्रताका अंकुर बोनेपर ही हम फल चख सके है।

आतिश—काम करती रही वो चश्मे-फ़ुसूँ साज़ अपना
नीची नज़रोंसे दिखाया मुझे एजाज़ अपना

मुसहफ़ी—.................................
लबे-जाँ बख़्श दिखाया किये एजाज़ अपना

उस्तादने सानी मिसरेमे नीची नज़रोके एवज लबे-जाँ बख़्श बना दिया है। ऊले मिसरेमे जब चश्मे-फ़ुसूँ साज़ (जादूगर नज़रे) अपना काम कर रही है, तब सानी मिसरेमे फिर वही नज़रोके ऐजाज़ (जादू) को दोहरानेकी अपेक्षा प्रियतमाके लबे-जाँबख़्श (प्राण डालनेवाले ओष्ठ) भी अपना एजाज (चमत्कार) दिखाते रहे कहना ही उपयुक्त है।

आतिश—सुना करते थे हम कि पहलूमें दिल है
जो चीरा तो इक क़तरए-ख़ूँ न निकला

मुसहफ़ी—बड़ा शोर सुनते थे पहलूमें दिल है
....

उस्तादने ऐसी इस्लाह दी कि यह शेर आमफहम हो गया है। अगर धृष्टता क्षमा की जाय तो मेरी नम्र सम्मतिमे बडा शोरकी बजाय 'बहुत शोर' भी उपयुक्त है।

नासिख़-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १७३८; मृत्यु १८३८ ई०]

शैख़ इमामबख्श 'नासिख़' लखनवी थे। शाइरीमे किसीके शिष्य नही थे, परन्तु शाइरीमे वोह नाम पैदा किया कि—वजीर, बर्क, रश्क, बहर, मुनीर, नादर-जैसे प्रसिद्ध शाइर आपके ही शिष्य थे। आतिशके प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते थे। कसरतका शौक था। १३०० डंड रोज़ाना पेला करते थे। खाना एक वक्त खाते थे, मगर वह ५ सेरसे कम न होता था। आम खाने बैठते तो तीन-चार टोकरे हजम कर जाते। जामनें आती तो ५-६ सेरसे कम न खाते थे। लगी लिपटी बिलकुल न रखते थे, जो बात नागवार गुजरती तो फौरन मुँहपर कह देते थे। चाहे सुननेवालेको कितनी ही नागवार गुज़रे और वह कितना ही बडा क्यो न हो। आपकी नाजुक मिज़ाजीके अनेक लतीफे मशहूर है। लखनऊकी ख़ारजी रंगकी शाइरीके आप ही आविष्कारक समझे जाते है। खारजी शाइरीमे बाहरी सौन्दर्य्य, शब्दोका रख-रखाव, नाजुक खयालीकी तो भरमार होती है। लेकिन तासीर कम होती है। यूँ समझिए गुलाबकी पत्तियोपर बेल-बूटे बनानेके प्रयासमे यह ध्यान ही नही रहता कि उसका प्राकृतिक सौन्दर्य-नष्ट हुआ जा रहा है। खारजी शाइरी भाव-प्रधान न होकर सौन्दर्य्य प्रधान होती है। नासिख़ तीन दीवान, एक मसनवी, स्मृति स्वरूप छोड गये है।

वज़ीर[1]—मंज़ूर है कि रंज मुझे हो, जहाँको ऐश
रक्खूँ न कोई बाग़में काँटा गुलाबका
नासिख़—..
तोड़ूँ एवज़ मैं फूलके काँटा गुलाबका

सानी मिसरेमे काँटा शब्द आया है तो खारजी शाइरीके अनुसार फूल भी होना चाहिए। उस्तादने सानी मिसरेमें फूल शब्द डालकर वज़ीरकी यह ग़लती भी सुधार दी है और "तोड़ूँ एवज़ मैं फूलके काँटा" बनाकर शेरके भावको बहुत स्पष्ट और बुलन्द बना दिया है। वजीरके सानी मिसरेसे ध्वनित होता था कि वह बागमे फूलके अतिरिक्त एक भी काँटा नही रखना चाहते, फूल-ही-फूल चाहते हैं। नासिख़की इस्लाहसे यह खूबी आ गयी कि वे स्वयं काँटे तोड़कर उद्यानको फूलमय बना देना चाहते है। संसारका विष पीकर अमृत औरोके लिए छोड देना चाहते है। वजीर विश्व-सुखके लिए स्वयंको दुःख (रंज) मे घिरे रहनेको प्रस्तुत है। लेकिन जबतक दूसरोंके दु.ख रूपी काँटोको तोड़ा न जायगा, विश्वरूपी उद्यानमे केवल फूल-ही-फूल (ऐश-ही-ऐश) क्योकर नसीब होगे ?

वज़ीर—ज़ाहिद ! हराम मै को बतायेगा तू अगर
जन्नतमें छीन लूँगा प्याला शराबका
नासिख़—.............................न कहना वगर्ना मैं
....

उस्तादकी इस्लाहसे धमकीमें ज़ोर आ गया।

वज़ीर—शुक्र है अब तक न मैं मिन्नत कशे-गर्दूं[2] हुआ
ख़ाकसे पैदा हुआ और ख़ाक में [3]मदफ़ूँ हुआ
नासिख़—मर गया लेकिन..............................
....

---

1. ख्वाजा मुहम्मद साहब वज़ीर लखनवी। 2. किसीका एहसानमन्द, आभारी, 3. दफ़्न, ज़मीनमें गाड़ा गया।

इस्लाहसे स्वाभिमानमे काफी दृढता आ गयी। मुहावरा भी यही है—मर गया लेकिन आन न छोडी।

वज़ीर—इसी बाइस तो क़त्ले-आशिक़ाँसे मनअ् करते थे
अकेले फिर रहे हो यूसुफ़े-बेकारवाँ[1] होकर

नासिख़—इसी ख़ातिर ....
....

उस्तादने 'बाइस' शब्द निकालकर आम फ़हम 'ख़ातिर' शब्द रख दिया है। यह शेर उर्दू-संसारमे काफी मशहूर है।

वज़ीर—मुए[2] हम रश्कके[3] मारे, किया ग़ैरों को क़त्ल उसने
अजल[4] भी दोस्तो आयी, नसीबे-दुश्मनाँ[5] होकर

नासिख़—किया ग़ैरों को क़त्ल उसने, मुए हम रश्क के मारे
....

एक भी शब्द परिवर्त्तन, परिवर्द्धन किये बिना ही ऊले मिसरेको इधरसे उधर कर देनेसे शेरमें नफासत आ गयी है। रकावतपर यह अच्छा शेर है। माशूकसे कृपाभावकी तो कोई आशा ही नही थी, उसने आशिकको ज़ुल्म सहने योग्य भी न समझा। अपनी तेगे-नाज़से उसे क़त्ल करनेकी अपेक्षा ग़ैर (प्रतिद्वंद्वी) को तरजीह दी। वह मारे ईर्ष्याके 'फ़िराक' गोरखपुरीके शब्दोमें यह कहता हुआ मर गया—

आह अब मुझसे तुझे रंजिशे-बेजा भी नहीं
....

---

१. यूसुफ़की तरह सहयात्रियोंसे बिलग। २. मर गये, ३. ईर्ष्यासे, ४. मृत्यु, ५. शत्रुकी बदौलत।

वज़ीर—ग़ज़ब है झुकके मिलते हो, और उस पै क़त्ल करते हो
सितम ईजाद हो, नावक लगाते हो कमाँ होकर

नासिख़—अदासे झुकके मिलते हो, निगहसे क़त्ल करते हो
....

वज़ीरके ऊले मिसरेमे कमानकी तरह झुकनेका तो उल्लेख है, परन्तु किस हथियारसे, माशूक क़त्ल करता है इसका कोई संकेत नही, जब कि सानी मिसरेमे नावक (तीर) और कमाँ (धनुष) दोनों शब्द आये है। अतः उस्तादने 'निगह' शब्दका इज़ाफा करके अपने ख़ारजी रंगका शेर बना दिया। निगहको अक्सर तीरकी उपमा दी जाती है। स्वयं वज़ीरका यह शेर बहुत मशहूर है—

तिर्छी नज़रोंसे न देखो आशिक़े-दिलगीरको
कैसे तीरन्दाज़ हो सीधा तो कर लो तीरको

बहर[1]—नफ़रत हमारी ख़ाकसे भी यारको ये है
रक्खा क़दम तो पाँयचाँ अपना उठा लिया

नासिख़—...................... ख़ाकसे बाक़ी है यारको
....

बहरके ऊले मिसरेमे 'भी ये है' शब्द भर्ती के-से थे। उस्तादके द्वारा तनिक-से परिवर्त्तनसे ज़बानका आमफ़हम शेर हो गया। पाँयचाँ उठानेकी माशूकाना अदा ख़ूब है। अक्सर देखा जाता है कि धूल-कीचडसे बचनेके लिए सलवारका पाँयचाँ या साडी टख़नोसे ऊपर सरका लिये जाते है। उसी अदाको बहरने नफरतकी मौलिक उपमा दी है।

---

१. शैख़ इम्दादअली बहर लखनवी।

बहर—क़ामते-यारकी[1] तशबीह[2] जो ढूँड़ी मैंने
उड़के क़ुमरी[3] की तरह ख़ुल्दसे[4] शम्शाद[5] आया
नासिख़—.................. ....जो चाही मैंने
....

'ढूँडो' के बजाय 'चाही' शब्दसे शेरमे सुथरापन आ गया।
बहर—तआ़न[6] रिन्दों[7] पै न कर शैख़ ! ख़ुदा लगती बोल
उसके अल्ताफ़[8] सिवा हैं कि गुनहगार बहुत
नासिख़—.................. ....
............................बहुत..........................

उस्तादने सानी मिसरेमे 'सिवा' के एवज़ 'बहुत' जडकर दो बातें ज़ाहिर की हैं। प्रथम यह कि बहरके मिसरेमे जब 'सिवा शब्द है तो अनायास प्रश्न उठ खडा होता है कि किससे उसके अल्ताफ सिवा है ? मिसरेमे इसका कही 'जवाब नही' है। द्वितीय यह कि 'सिवा' से 'बहुत' अधिक अर्थपूर्ण है और सरल है। आम बोल-चालमे—आपके एहसानात हमपर सिवा है के बजाय आपके एहसानात हमपर बहुत है, लोग कहते है। सानी मिसरेमे दो बार 'बहुत' शब्द समो दिये जानेसे शेरमे एक जिद्दत पैदा हो गयी है—देखे तो सही उसके (ख़ुदा) के अल्ताफ बहुत है या गुनहगार बहुत है। उसकी क्षमाशीलताके भरोसेपर ही गुनहगारोंकी संख्या बढ रही है, क्योंकि वह क्षमावतार आगे बढकर बडे-बड़े अपराधियोको ही पहले क्षमा करेगा। जिन्होने उसकी रहमतपर शक होनेके कारण कोई गुनाह नही किया, उनकी क्या खाक वकत होगी, बकौल शख्से—

---

१. प्रियतमाके क़दकी, २. उपमा, ३. एक प्रसिद्ध सफ़ेद पक्षी जो अकसर सरूके पेड़पर बैठता है, ४. जन्नतसे, ५. सरूका पेड़ जो सीधा होता है और जिससे नायिकाके क़दकी, लम्बाईकी उपमा दी जाती है। ६. ताना मारना, व्यंग्य करना, ७. सुरासेवियोंपर, ८. कृपाएँ, महर्बानियाँ।

ऊँचे-ऊँचे मुजरिमों की पूछ होगी हश्रमें
कौन पूछेगा मुझे मैं किन गुनहगारोंमें हूँ

बहर—घरसे निकलके चाल चले किस अदा से तुम
सौ-सौ मज़ार बन गये हर नक़्शे-पा के पास

नासिख़—.. .. ..
इक ताज़ा क़ब्र बन गयी..........................

उस्तादकी इस्लाह स्पष्ट है। ऊले मिसरेमें 'अदा' और सानी मिसरेमे 'हर नक्शे-पा (प्रत्येक चरण-चिन्ह) के साथ इक-इक क़ब्र बनती गयी।

बहर—क़दम मैकदेसे न निकलेगा अपना
यहीं नशः में गिरते-पड़ते रहेंगे

नासिख़—..................................बाहर
....

बहर—इतनी बे परवाई भी अच्छी नहीं
लोग करते हैं शिकायत आपकी

नासिख़—इतनी बे परवाइयाँ..............
....

उक्त दोनो शेरोकी इस्लाहे स्पष्ट हैं।

आतिश-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १७६४; मृत्यु १८४७ ई०]

ख्वाजा हैदरअली 'आतिश' दिल्ली-निवासी थे, किन्तु लखनऊमे जीवनका अधिकाश समय व्यतीत हुआ। आप 'मुसहफी'से मशवरए-सुख़न लेते थे, उनके बाद आपने वोह बुलन्द मर्त्तबा हासिल किया कि तत्कालीन लखनऊके आप सर्वश्रेष्ठ शाइर माने जाते हैं। अवध-सरकारसे ८० रु० मासिक-वृत्ति मिलती थी, जो चार रोज़मे ही खर्च हो जाती थी, कर्ज लिये बिना गुजारा नही चलता था। केवल एक लँगोट बाँधे सब दिन बोरियेपर एक तकियेके सहारे बैठे रहते थे। एक टूटा-फूटा सड़ियल-सा हुक्का सामने रखा रहता था। आने-जानेवाले अमीर-गरीब सभीके बैठनेको बोरिया और पीनेको यही हुक्का पेश होता था। भग खूब छनती थी। सिपाहियाना वेश पसन्द करते थे। मुशाअ़रोमे गजल पढने जाते तो कमरकी तलवार म्यानसे दो अगुल बाहर रखते थे। करीब साढ़े आठ हज़ार शेरके दो दीवान यादगार छोडे है। आपके रिन्द, वज़ीर, सबा, खलील, जलील, नसीम जैसे नामवर शिष्य थे।

सबा[1]—इश्क़बाज़ीका जो सौदा हो गया
आप मैं अपना तमाशा हो गया

आतिश— ख़ुदपरस्तीका.......................
....

'इश्कबाजी'के एवज़ 'खुदपरस्ती' (अहम्मन्यता, आत्मपूजा) का नगीना जडकर उस्तादने बेरौनक शेरको चमत्कृत कर दिया है। इश्क

१. मीर वज़ीर अली 'सबा' लखनवी।

करनेसे स्वयं अपनी नज़रोमे तमाशा कोई-कोई बनता है, परन्तु अपनेको ही सब कुछ समझ बैठनेकी अहम्मन्यता, दूसरोसे अपनेको श्रेष्ठ समझनेकी निकृष्ट भावना रखनेवाला व्यक्ति औरोकी दृष्टिमे ही नही, अपनी नजरोमे भी गिर जाता है, तमाशा बन जाता है।

सबा—दौर-दौरा जो युँ ही तेग़े-जफ़ाका होगा
यह तो कहिए कोई मर जायगा तो क्या होगा ?

आतिश—वार हरदम ....
....

ऊले मिसरेमे जब 'तेगे-जफा' (अत्याचारीकी तलवार) का उल्लेख किया तो उसके वारका भी उल्लेख आवश्यक था। तलवारका दौर-दौरा नही, वार होता है। उस्तादने 'सबा'की इसी भूलको सुधारा है।

सबा—बैठा है हड्डियों पै मेरी शेरकी तरह
देखे कोई ज़रा सगे-दिलदारका मिज़ाज

आतिश—बिफ़रा...
....

शेरका आशय ये है कि दिलफेक किस्मके आशिक घरमे न घुस आयें, इसलिए दिलदारने सग (कुत्ता) पाल रखा है और वह शेरकी तरह आशिक़ोंकी हड्डियाँ नोचनेके लिए प्रस्तुत है। उस्तादने 'बैठा है' के एवज़मे 'बिफरा' बना दिया है। क्योकि 'सबा'ने सगे-दिलदारको शेरकी उपमा दी है। शेर गुस्सेमे या शिकार देखकर बैठता नही, पहले बिफरता है, फिर आक्रमण करता है।

सबा—मूसा हैं तूर पर तो, मसीह आस्मान पर
दोनों ढई दिये हैं तेरे आस्तान पर
आतिश—मूसा न तूर पर, न मसीह आस्मान पर
....

इस्लामी विश्वासके अनुसार 'मूसा' ईश्वरका जल्वा देखने तूर पर्वतपर गये और ईसाई धर्मानुसार 'मसीहा' सूली पानेके बाद ऊपर चले गये। अर्थात् दोनो ही खुदाके लिए ढई (धरना) दिये हुए हैं। आतिशने केवल 'न' शब्दसे शेरको ज़मीसे आस्मानपर पहुँचा दिया; अर्थात् लोगोंका वहम है कि मूसा तूरपर और मसीह आस्मानपर है, लेकिन वह तो तेरे (खुदाके) आस्ताँ (द्वार) पर धरना दिये बैठे है।

सबा—किसीने बात न पूछी मलाल लेके चले
लहद्में साथ हम अपना कमाल लेके चले
आतिश—कभी न क़द्र हुई यह मलाल लेके चले
....

कमालके लिए कद्र ही ज्यादा मौजूँ है। सबाके मिसरेसे यह ज़ाहिर नही होता था कि कौन-सा मलाल लेके चले। 'यह' के इज़ाफेने आशय स्पष्ट कर दिया।

सबा—हज़ार बार क़यामत उठायी नालों ने
मगर हनूज़[1] शबे-इन्तज़ार[2] बाक़ी है
आतिश—.......................गुज़र गयी हमपर
....

इस्लाहने शेरको बहुत बुलन्द कर दिया।

---

१. अभीतक। २. प्रतीक्षाकी रात्रि, विरहकी रात।

ग़ालिब-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १७९७ ई० मृत्यु १८६९ ई०]

मिर्जा असदुल्ला ख़ाँ 'गालिब' उर्दूके अमर शाइर हुए हैं। वर्त्तमान युगीन शाइरीके आप इमाम समझे जाते हैं। जितनी महत्त्वपूर्ण आपने गज़लें कही हैं, उतने ही कमालका आपने गद्य लिखा है। जिस शानसे आपके दीवान सुन्दर एवं सुरुचिपूर्ण प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं, इस प्रकारका प्रकाशन किसी अन्य शाइरको नसीब नहीं हुआ। न जाने कितने संस्करण भिन्न-भिन्न प्रकाशकोंने अपने-अपने ढंगसे प्रकाशित किये हैं और करते रहेंगे। आपपर अनेक विद्वानोंने शोध-खोज की है और निरन्तर हो रही है। आप आगरेमें जन्मे, किन्तु १३ वर्षकी आयुमें दिल्ली पहुँचे और जीवन पर्यन्त वहींके हो रहे। १८५५ ई० में शेख़ ज़ौककी मृत्युके पश्चात् बहादुरशाह 'जफ़र' बादशाहके कविता-गुरुके पद-पर प्रतिष्ठित हुए। नजमुद्दौला, दबीरुल मुल्क और निज़ामे-जंग उपाधियोंसे विभूषित किये गये। मदिरा-पानका व्यसन था। जीवन-पर्यन्त आर्थिक चिन्ताओंमें ग्रस्त रहे।

मिर्ज़ा ग़ालिबकी इस्लाहें

नाज़िम[1]—आज वह ले गया दिल छीनकर मेरा मुझसे
जिसको मिट्टीके खिलौने पै मचलते देखा

ग़ालिब—दिलके लेनेमें यह क़ुदरत उसे अल्लाहने दी

....

'यह क़ुदरत उसे अल्लाहने दी' संशोधनकी प्रशंसाके लिए हमारे पास उपयुक्त शब्द नही।

नाज़िम—गर नहीं तेरी करामत तो यह क्या है साक़ी!
हमने साग़रको तिरी बज़्ममें चलते देखा

ग़ालिब—है यह साक़ीकी करामत कि नहीं जामके पाँव
और फिर सबने उसे बज़्ममें चलते देखा

नाज़िमके दूसरे मिसरेमे सागरके चलनेका तो उल्लेख था, किन्तु जिनसे चला जाता है उन पावोका कही पता नही था। उस्तादने उसो भूलको सुधारते हुए साकीकी करामातको बहुत शक्तिशाली बना दिया है।

रअ़्ना[2]—गुज़रा है मेरा नालः दरे-चर्ख़े-कुहनसे
था रूहका हम दम, न फिरा जाके वतनसे

ग़ालिब—गुज़रा है मेरा नालए-दिल चर्ख़े-कुहनसे
....

रअ़्नाके पहले मिसरेमे 'दरे' शब्द व्यर्थ था। उसीको निकालनेके लिए गालिबने 'दिल' शब्द जड़कर शेरको बा-मायनी बना दिया है।

---

१. हिज़ हाईनेस नवाव यूसुफ़ अलीख़ाँ बहादुर 'नाज़िम' वालिए-रामपुर।

२. मर्दानअली ख़ाँ रअ़्ना।

हाली[1]—उम्र शायद न करे आज वफ़ा
सामना है शबे-तन्हाईका

ग़ालिब—.................... .. . .
काटना है, ...

'शबे-तन्हाई रो-रोकर काटो' मुहावरा है, न कि शबे-तन्हाईका रो-रोकर सामना करनेका।

हाली—करें अहले दुनिया न आतिश मिज़ाजी
उन्हें एक दिन ख़ाक होना पड़ेगा

ग़ालिब—अज़ीज़ो[2]! कहाँ तक यह आतिश मिज़ाजी[3]?
तुम्हें.... ....

हाली—हुए तुम न सीधे जवानीमें 'हाली'
मगर अब बुढ़ापेमें होना पड़ेगा

ग़ालिब—..
मगर अब मेरी जान होना पड़ेगा

हाली—चुप-चुपाते किसी काफ़िरको दिया दिल हमने
माल मँहगा नज़र आता तो चुकाया जाता

ग़ालिब—चुप-चुपाते उसे दे आये दिल इक बात पै हम
....

हाली—बारहा देख चुके तेरा फ़रेब ऐ ज़ालिम!
हमसे अब जानके धोका नहीं खाया जाता

ग़ालिब—.................................. ऐ दुनिया!
....

---

१ शम्सुल उलमा मौलाना अलताफ़ हुसैन साहब 'हाली'

२. मित्रों, ३. गरम स्वभाव,

राक़िम[1]—अल्लाह मै हूँ और है ग़म वस्ले-यारका
क्या जाने कोई दर्द दिले-बेक़रारका
ग़ालिब—……… ……और यह ग़म… ……. .. ….
तू जानता है दर्द…. ….. ….. .. . . ..

पहले मिसरेमे बजाय 'है' के 'यह' बनानेसे मिसरेका जोर और बढ गया। दूसरा मिसरा 'राकिम' का भी खूब था। मगर गालिब-जैसे उस्तादने इसे और बुलन्द कर दिया। पहले मिसरेमे अल्लाहसे खिताब था, अतः दूसरा मिसरा भी उसीसे सम्बन्धित 'तू जानता है' बनाया।

१. राजा क़मरुद्दीन साहब 'राक़िम' देहल्वी।

वज़ीर लखनवी-द्वारा इस्लाहें

ख्वाजा मुहम्मद वज़ीर लखनवी 'नासिख़' के प्रसिद्ध शिष्योंमे-से थे। आख़िरी उम्रमे शेरो-सुख़नसे अरुचि हो गयी थी। और एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे थे। स्वाभिमानका यह हाल था कि नवाब वाजिद अलीशाहके दो बार बुलानेपर भी आप उनके यहाँ नही गये। ४००० अशआरका दीवान स्मृति स्वरूप छोड़ा है। १८५३ मे आपकी मृत्यु हुई।

कलक[1]—इधर भी देख लो जाता रहे गिला दिलका
बस इक निगाह पै ठहरा है फ़ैसला दिलका
वज़ीर—अदासे देख लो·························
··

कलक—इलाही खैर हो, कुछ आज रंग लाया है
टपक रहा है कई दिनसे आबला दिलका
वज़ीर—·······························रंग बेढब है
··

कलक—मुस्कराना तिरा याद आता है जब ऐ खुश[2] तर!
खून रुलवाता है गुञ्चोंका तबस्सुम[3] मुझको
वज़ीर—································ऐ गुले-तर!
··

कलक—निगहे-महरसे देखो जो ज़रा तुम मुझको
फिर जगह आँखोंमें देने लगें मर्दुम[4] मुझको
वज़ीर—····································
आँखका तारा समझने लगें मर्दुम मुझको

---

१. ख्वाजा असदअली आफताबुद्दौला साहब 'कलक' लखनवी। २. खुश-मिज़ाज, ३. कलियोंका मुस्कराना, ४. मनुष्य, जनता।

असीर-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८१४–मृत्यु १८८२ ई०]

सैय्यद मुज़फ्फर अली ख़ाँ 'असीर' लखनवी 'मुसहफी' के शिष्य थे। अवधके शासक नवाब वाज़िदअलीके ८-९ वर्ष मुँहलगे मुसाहब रहे और दबीरुद्दौला खिताबसे सम्मानित हुए। अवधके जेलख़ानोंके आला अफसर थे। वाज़िदअलीशाहके नज़रबन्द किये जानेपर आप उनके साथ कलकत्ते न जाकर रामपुर चले गये। उर्दूके ६ दीवान और फ़ार्सीके २ दीवान स्मृति स्वरूप छोडे। मर्सिये और मसनवियाँ भी बहुत-सी लिखी। अमीर-मीनाई, शौक किदवाई, नवाब सैय्यद यूसुफ हसन तबा-तबाई और पण्डित रतननाथ सरशार-जैसे ख्याति प्राप्त शाइर आपके शिष्य थे। ८१ वर्षकी आयुमें आपने लखनऊमें समाधि पायी।

अमीर[1]—ग़ज़ब दाग़ तूने दिये ऐ फलक !
कलेजा गुले-नीलोफर हो गया

असीर—ग़ज़ब चुटकियाँ हैं तेरी ऐ फ़लक !
.... · ....

कलेज़ा, गुले-नीलोफर (नीले दागवाला) कैसे हो गया ? इसका सबूत अमीरके ऊले मिसरेमे नही था। उस्तादने वही सबूत देकर शेरका नुक्स निकाल दिया है। केवल 'दाग' कहनेसे काले रंगके दागका बोध होता है। जिस्मके कोमल एवं नाज़ुक अंशपर चुटकी भरनेसे नीला दाग पड जाता है। इसीलिए उस्तादने दागके एवज़ चुटकियोका प्रयोग किया है।

---

१. मुंशी अमीर अहमद साहब 'अमीर' मीनाई लखनवी।

अमीर—क़बाबे सीख़ है हम, करवटें हरसू बदलते हैं
जो जल जाता है यह पहलू तो वह पहलू बदलते हैं

असीर—..
जल उठता है यह पहलू तो वोह पहलू बदलते हैं

अमीरके दूसरे मिसरेमे प्रारम्भमे ही तीन जकार लगातार आये है। लतातार एक ही अक्षर कई बार प्रयुक्त करना शाइराना दोष है। 'जो जल जा' कानोको खटकता भी है।[१]

अमीरके शेरका आशय है कि—आशिकका दिल बिरह-तापमे पिघलकर कबाब हो गया है। जैसे कबाब लोहेकी सीख़ोपर लपेटकर आगमे सेंका जाता है, उसी तरह आशिकका कबाबे-दिल बिस्तरेमे पडी हुई सलवटोंपर सीखकी तरह रखा हुआ है। बिरहकी आँचसे कबाबे-

---

१. इसी तरह की भूल मीर दोस्तअली खलीलसे भी हुई थी। वे आतिशके शिष्य थे।

मीर दोस्तअली 'खलील' ख्वाजा 'आतिश' के शिष्य थे। एक मुशाअ़रेमें उस्तादसे संशोधन लिये बिना ही खलीलने ग़ज़ल पढ दी। मुशाअ़रेके दूसरे दिन आप उस्तादकी सेवामें उपस्थित हुए। दरियाफ्त करनेपर कि कल मुशाअ़रेमें कौन-सी ग़ज़ल पढी। खलीलने अपनी ग़ज़लका यह मतला सगर्व पढा—

मुद्दतके बाद आज वोह ऐ महर्बां मिले
दिलकी कहूँ जो जानकी मुझको अमा मिले

मतला सुनते ही उस्तादने दरियाफ़्त किया—"जो जानकी" क्या आपकी खाला (मासी) का नाम है?"

खलील काफ़ी देर हतप्रभ-से रहनेके बाद झिझकते हुए बोले—"तब क्या होना चाहिए?"

जवाब मिला—इससे तो यही कहना बेहतर था—

मुद्दतके बाद आज वोह ऐ महर्बां मिले
दिलकी कहूँगा जानकी मुझको अमाँ मिले

दिलको सेंकता हुआ कभी इस करवट सेंकता है, कभी दूसरी करवट सेंकता है। अमीरके मिसरेमे 'जल जाता है' के वजाय उस्तादका 'जल उठता है' संशोधन बहुत सार्थक है। जल जानेके बाद पहलू बदलनेसे क्या लाभ? उस्तादके "जल उठता है" शब्दसे ध्वनित होता है, कि जल उठनेकी स्थितिसे पहिले ही आशिक पहलू बदल लेता है।

हकीम[1]—गुलचींसे दो क़ुसूर हुए एक छोड़के
बुलबुलका दिल शिकिस्त किया गुलको तोड़के

असीर—.. ....
बुलबुलके बाल बाँधे-रगे-गुलको तोड़के

हकीमके सानी मिसरेमे गुलचीके दो कुसूर साबित नही होते थे। क्योंकि गुलचीने तो सिर्फ़ गुलको तोडा है। बुलबुलका दिल शिकिस्ता करनेका वह जिम्मेदार नही। उस्तादकी इस्लाहने गुलचीके सर दोनो कुसूर मढ दिये। उक्त इस्लाह शाइराना नाजुक खयालीके लिहाजसे भले ही दिलचस्प हो, वर्ना रगे-गुलसे बुलबुलके बाल बाँधना मुमकिन नही।

आबिद[2]—शिकवा हो शमअ़से क्या महफ़िलकी वरहमीका
दिल ही जला हुआ था, वक़्ते-सहर हमारा

असीर—..
दिल ही बुझा हुआ था,...... ....

वक्ते-सहर (प्रातःकाल) शमअ़के बुझनेसे महफ़िल भी छिन्न-भिन्न हो गयी। आशिक शमअ़से उसके बुझ जानेका क्या गिला करता, क्योंकि उसका दिल जला हुआ था।

उस्तादने 'जला' के वजाय 'बुझा' बना दिया। वक्ते-सहर जलनेके

---

१. गजनफर हुसैन साहब 'हकीम' लखनवी। २. मीर आबिद हुसैन साहब 'आबिद'।

बजाय बुझना ही उपयुक्त है। साथ ही शमअके बुझ जानेकी जो शिकायत थी, वह भी स्पष्ट हो गयी।

आबिद—गुस्सा आया था तुमको मूसापर
तूरको क्यों जलाके ख़ाक किया ?
असीर—तुमको आया जलाल मूसापर
.. ..,.. . .

हजरत मूसा पैगम्बरके ज़िदकी वजहसे ख़ुदाने उन्हे अपना जल्वा तूर पर्वतपर दिखलाया तो मूसाकी आँखें चुँधिया गयीं, वे उस रूपको देखनेकी सामर्थ्य न ला सके और उस जल्वेकी तपिशसे तूर पर्वत जलकर स्याह हो गया।

इसी इस्लामी धारणाके अनुसार 'आबिद' ने उक्त शेर कहा है। लेकिन इस शेरका माशूक इन्सान नही, ख़ुदा है। अतः ख़ुदाके लिए गुस्सा शब्दका प्रयोग बे-अदबी है। जलाल शब्द बहुत उपयुक्त और भक्तिपूर्ण है। जलालका अर्थ है—प्रताप, तेज, अज़मत। किसी प्रतिष्ठित मनुष्यके लिए "आज वे बहुधा गुस्सेमें थे" कहनेके बजाय "आज वे पूरे जलालमे थे" कहा जाता है।

आबिद—मेरे अरमान यूँ पूरे किये सोज़े-मुहब्बतने
जला जब दिल तो दिलसे हसरतें निकली धुआँ बनकर
असीर—...... ....
फुँका.............................. ....

आशिक बेचारेकी हसरतें (इच्छाएँ) दिलमे ही दबी रहती हैं। उन्हे निकलने (पूर्ण होने)का सुयोग ही नही मिल पाता। आख़िर सोज़े-मुहब्बत (प्रेमाग्नि)की वजहसे दिल जला तो हसरतें धुआँ बनकर ही सही, दिलसे निकली तो। आबिदके दिलको 'जला' के बजाय उस्तादने 'फुँका' बना दिया है। एक शब्दके हेर-फेरसे शेर बहुत लतीफ बन गया है।

शरीफ़[1]—आईना पेशे रू है, तो शाना है हाथ में
आँखोंमें है हुज़ूरके सुर्मा लगा हुआ
....

असीर—उश्शाक़पर गिरेगी ज़रूर आज बर्क़े-तूर
....

शरीफका शेर वेजान था। आईना, शाना (कंधा) सुर्मा केवल भर्तीके शब्द थे। उस्तादने सुर्माके मुकाबिलेमे 'बर्क़े-तूर' जड़कर शेरको चमका दिया। सुर्मेका रंग स्याह होता है और तूरका रंग भी काला है।

अंजुम[2]—तेरे दर्दका दिले-मुब्तला ! यह बता इलाज मैं क्या करूँ ?
जो तबीब[3] हूँ तो दवा करूँ, जो फ़क़ीर हूँ तो दुआ करूँ

असीर—.......... ....
न तबीब हूँ कि दवा करूँ, न फ़कीर हूँ कि दुआ करूँ

उस्तादने दूसरे मिसरेमे 'न' और 'कि' का इज़ाफा करके बहुत सार्थक और बुलन्द बना दिया। वाह क्या इस्लाह दी है।

वाक़िफ़[4]—आ गयी मौत बे अजल उसकी
जिसको देखा ज़रा नज़र भरके

असीर—..................................
तूने देखा जिसे ....

किसके नज़र भरके देखनेसे मौत आ गयी, इसका सबूत वाकिफके शेरमे न था। 'नज़र भरके' देखा तब 'ज़रा' शब्द व्यर्थ था। इस्लाहसे यह दोष भी दूर हो गया और सबूत भी पेश कर दिया।

---

१ शाह महमूद अहमद साहब 'शरीफ' रदौलवी। २. नवाब बहादुर हुसैन खाँ 'अंजुम' लखनवी। ३. हकीम। ४. दारोगा वाजिद हुसेन साहब वाक़िफ लखनवी।

वाक़िफ़—फिर रहे हैं रात-दिन, लेते नहीं मंज़िल पै दम
क़ाफ़िला गुम हो गया शायद कि महरो-माहका
असीर—जुस्तजूमें रात-दिन फिरते हैं, दम लेते नहीं
....

वाक़िफ़—यह कम मश्की तो देखो छिद गया दिल
जिगर जब उस कमान अबरूने ताका
असीर—नज़रका तीर दिलने बढ़के रोका
....

वाक़िफ़—जान दी हमने जो ऐ जान! तुम्हारे ग़ममें
तुमने भूलेसे भी हमको न कभी याद किया
असीर—इसी हसरतमें यहाँ मर गये, [1]मरते-मरते
....

---

१. मर-मरके मरना, बार-बार मृत्यु-मुखमें जाकर बच जाना, फिर बमुश्किल जान निकलना।

नसीम-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १७६१; मृत्यु १८६६ ई०]

नवाव मिर्ज़ा असगर अलीख़ाँ 'नसीम' देहलवी मोमिन ख़ाँ-जैसे श्रेष्ठ गज़लगो उस्तादके शिष्य थे। पारिवारिक झगडोके कारण आप देहली छोडकर लखनऊ जा वसे थे। कुछ दिनो वाजिदअलीशाहके दरवारमे रहे। उनकी नज़रवन्दीके वाद नवलकिशोर प्रेसमे मुलाज़िम हो गये। आपने अपना कलाम कभी सँजोकर रखनेका प्रयास नही किया। आपके शिष्य हसरत मोहानीने यत्र-तत्रसे एकत्र करके ४०० अशआरका संकलन मुद्रित कराया। आप लखनऊमे वस जानेके वाद भी देहलवी रंगमे ही शेर कहते रहे। आपके कलामको मिर्ज़ा गालिव भी पसन्द करते थे।

आशिक़[1]—उठ जायगा वोह ग़ैरते-गुल जव कि चमनसे
मुर्झाये हुए फूल गुलिस्ताँ में रहेंगे
नसीम— जायेगी वहार आपके हमराह चमनसे
....

आशिकके पहले मिसरेमे 'उठ जायगा' शब्द कानोमे खटकता है। उसका प्रयोग माशूकके लिए उपयुक्त नही। 'उठ गया' शब्द 'मर गया' के मायनोमे भी प्रयुक्त होता है।

गुलिस्ताँमे फूल मुर्झाये हुए क्यो रहेगे ? इसका भी पहले मिसरेमे कोई सवून नही था। उस्तादने इस्लाह देकर सवूत पेश कर दिया है कि

---

१. मिर्जा मच्छूवेग 'आशिक़' लखनवी।

माशूकके हमराह (साथ-साथ)—चमनसे बहार चली जायगी तो बहारके अभावमे फूल लाजिमी मुर्झा जायेगे।

महर[1]—बाग़में ग़ुञ्चः दहन आया है
फूली फिरती है सबा क्या बाइस?
नसीम—बाग़में होगा वही ग़ुञ्चः दहन
....

'महर' दूसरे मिसरेमे सवाल करते है कि सबाके फूली-फिरती घूमनेका बाइस (कारण) क्या है? और स्वयं ही सवाल करनेसे पूर्व पहले मिसरेमे कह भी देते है कि बागमे गुञ्च दहन (कली-जैसे सुन्दर मुखवाला) आया है। पहले मिसरेमे जब निश्चयात्मक बात कह दी गयी, तब दूसरे मिसरेमे सवाल करना व्यर्थ था। उस्तादने 'आया' के बजाय 'होगा' बनाकर शेरको बामायनी बना दिया है।

तस्लीम—हाय अब तक न रुख़े-साग़रो-मीना देखा
अज क्या जानए मुँह उठते ही किसका देखा
नसीम[2]—..
.... मुँह सुबह को ....

'उठते ही' से मिसरेमे अश्लीलता झलकती थी। उस्तादके 'सुबहको' बना देनेसे वह दोष भी दूर हो गया और मिसरा बा-मुहाविरा बन गया।

तस्लीम—लाती है फ़र्क़ रस्मे-मुहब्बतमें दिललगी
छेड़ा सबाने आके तो ग़ुञ्चा चटक गया
नसीम—..
छेड़ा सबा ने प्यार से ग़ुञ्चा चटक गया

१. अब्दुल्ला ख़ाँ 'महर' लखनवी। ...र अल्लाह 'तस्लीम' लखनवी।

तस्लीमके दूसरे मिसरेमे 'आके तो' शब्द व्यर्थ था। सबा तो सर्वत्र व्याप्त है, उसका आना क्या मानी ? उस्तादने—'आके तो' के बजाय 'प्यारसे' बनाकर पहले मिसरेमे आये हुए 'मुहब्बत' की अनुकूलता भी पूर्ण कर दी।

तस्लीम—पहलू में अब कहाँ दिले-गुम गश्तः[1] का पता
मुद्दत हुई कि दीदः-ए-तर[2]से टपक गया
नसीम—........ .. ..दिले-ख़ूँ गश्तः[3] का पता
....

गुमगश्त. दिल किसीके पाससे या कही इधर-उधर खोजनेसे मिलना सम्भव, किन्तु उसका आँखोसे टपकना नामुमकिन। आँखोसे तो तरल वस्तु ही टपक सकती है। अत. उस्तादने 'गुम' के बजाय 'ख़ूँ' बनाया।

तस्लीम—फूल खुश्क, अफसुर्दः सब्जः शमअ चुप बालीं उदास
रो दिये हम आलमे-गोरे-ग़रीबाँ देखकर
नसीम—.......... ....
जी भर आया आलिमे.................. ....

तस्लीमने अपने उक्त शेरमे व्यथा–पीड़ाका जो दृश्य उपस्थित किया है, उसकी दाद देनेको हमारे पास शब्द नही। उस्तादने भी 'रो दिये' के बजाय 'जी भर आया' का नगीना जड़कर उस्तादाना कमाल दिखाया है।

तस्लीम—सच्चा है अगर दावाए-दिलमें वही काफ़िर
रख देते हैं मस्जिद में क़सम खाके उठाले
नसीम—................ ....दिल में बुते काफ़िर
....

---

१. खोये हुए दिल। २. अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे। ३. वह दिल जो पिघलकर ख़ून बन गया।

उस्तादने केवल 'वही' के बजाय 'बुत' बनाया है। वही शब्द भर्त्तीका था। काफ़िरको बुते-काफिर बनाकर मस्जिदके लिए मुनास्बत भी पैदा कर दी।

'तस्लीम' लखनवी-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८२०; मृत्यु १९११ ई०]

अहमद हुसेन उर्फ अमीर अल्लाह 'तस्लीम' फैज़ाबादमे पैदा हुए। शिक्षा-दीक्षा लखनऊमे हुई। आप 'नसीम' देहलवीके शिष्य थे। वाजिद-अलीशाहकी सरकारमे मुलाज़िम रहे। विप्लवके बाद आप रामपुर चले गये। गजलोके ५ दीवान और ७ मसनवियाँ, रामपुरकी तारीख़, सफरनामा नवाब रामपुर, (२५००० अशआरमे) स्मृतिस्वरूप छोड़े है। लखनवी होते हुए भी देहलवी रंगमे शेर कहते थे।

[सैय्यद जमीरुद्दीन 'अर्श'के कलामपर स्वयं उस्ताद तस्लीमने इस्लाहकी वजह बयान की है। अत हम यहाँ अपनी तरफसे कुछ न लिखकर इस्लाहके साथ उस्तादके उपयोगी नोट्स दे रहे है]

अर्श—मेरे नालोंसे होता है यकीं आज
उड़ेगी मिस्ल ज़र्रेके ज़मीं आज

तस्लीम—नालेसे ज़मीनको क्यो ज़रर होगा ? यूं कहो—
फ़लक भी होगा पा बोसे-ज़मीं आज
....

अर्श—जहाँ कल देखते थे एक मज्मा
नज़र आता वहाँ कोई नहीं आज

तस्लीम—मिसरासानीमे ताकीद[1] है यूँ बना दो—
....
वहाँ कोई नज़र आता नहीं आज

---

१. लफ़्ज़ोंको कलाममें ऐसे आगे-पीछे रखना, जिससे मतलब देरमें समझमें

अर्श—हूँ सुर्ख़रू जहाँ में, वह दिन ख़ुदा करे
मेरा अज़ल से दाँत है अँगियाके पान पर

तस्लीम—क्या छातियाँ काट खाओगे ? [सुर्ख़रू का अर्थ है 'सम्मानित'] यह शब्द देश या कौमके लिए शहीदहोनेपर या बहुत बड़ा कारनामा करनेपर या सफलता पानेपर इस्तेमाल होता है। जैसे—

सुर्ख़रू होता है इंसा ठोकरें खानेके बाद
रंग लाती है हिना पत्थर पै पिस जाने के बाद

चूँकि सुर्ख़रूके मायने लाल रगके भी है। अत. अर्श माशूक़की अँगियाँपर बने पानके बूटेको चबाकर सुर्ख़रू (लाल ओठवाले) होना चाहते थे, किन्तु उस्तादने इसे व्यर्थ समझकर निकाल दिया।

अर्श—इस सादा दिलने मुझको जो दीवाना कर दिया
ज़ंजीर नापसन्द हुई, नागवार तौक़

तस्लीम—सादा दिल अहमकको कहते है। पहले मिसरेको यूँ बना दो—

इस सादा रौने मुझको जो दीवाना कर दिया।
....

अर्श—नज़र आते नहीं हँसने में दन्दान
गिरे हैं उसके मुँह से फूल झड़कर

तस्लीम—फूल झड़ना और चीज़ है, नज़र आना और शै है। इससे तो यह पाया जाता है कि उसके दन्दान फूल बनके झड़ गये। इसे गजलसे निकाल दो।

अर्श—जिब्रील[1] तो क्या, उनका तसव्वुर[2] भी न पहुँचे
है अर्श[3] से ऊँचा कहीं ईवाने-बनारस[4]

तस्लीम—भाई इतना कुफ़्र अच्छा नही।

आये। वाक्योंमें शब्दोंको यथास्थान न रखकर उलट-पलट रखना जैसा कि अर्शके दूसरे मिसरेमें है।

१. एक फ़रिश्ता, जो पैग़म्बरोंके पास ख़ुदाका आदेश पहुँचाया करता था। २. ख़याल, ध्यान। ३. आकाशसे ऊँचा। ४. बनारसके मन्दिर।

हसरत[1]—सितम[2] हो जाये, तमहीदे-करम[3] ऐसा भी होता है
बता शीरी-वफ़ा[4] ऐ जब्ते-ग़म ! ऐसा भी होता है
तस्लीम—.................. ....

मुहब्बतमें बता....... ....
हसरत—जफ़ाए-यारके शिकवे न कर ऐ रंजे-नाकामी !
सकूनो-नाउमीदी[5] हों, बहम[6] ऐसा भी होता है ?
तस्लीम—....... ....

उम्मीदो[7]-यास[8] दोनों हों ... .
हसरत—विक़ारे-सब्र खोया, गिरय: हाये बेक़रारीने
कहीं ऐ एतबारे-चश्मे-नम ! ऐसा भी होता है

इस शेरपर हज़रत तस्लीमने यह नोट लिखकर यह शेर निकाल दिया कि अब "चश्मे-नम" मतरूक (उर्दूमे जाइज़ नही) है। चश्मे-पुरनम सही है।

शौक़[9]—इतने अरमान हैं ऐ शौक़ ! हमारे दिल में
आर्ज़ू ढूँढ़ती हैं राह निकलने के लिए
तस्लीम—हस्रतें भर गयीं ऐ शौक़ ! यहाँ तक दिल में
....

अर्मान और हस्रत यूँ तो समानार्थक है। अर्मानके मायने है—इच्छा, ख्वाहिश, उत्कण्ठा, लालसा, लालच, इश्तियाक और हस्रतके मायने भी लगभग यही है—अभिलाषा, लालसा, इच्छा। किन्तु हस्रतके यह भी मायने है जो अर्मानके नही—निराशा-दुःख, कष्ट, पश्चात्ताप,

---

१. सैयद फजल हुसैन साहब हसरत मोहानी। २-३ जिसके लिए भलाईका प्रयास किया जाये, उसके हक़में वह भलाईके बजाय बुराई या ज़ुल्म हो जाये। ४. मधुर नेकी। ५ सुख और निराशा। ६. परस्पर मिलें। ७. आशा। ८. निराशा। ९. मुहम्मद ज़हीर हसन 'शौक़' नीमवी।

अफ़सोस। 'हस्‌रत'में निराश प्रेमीकी कष्टजन्य अभिलाषाएँ निहित है और अर्मान केवल अभिलाषा-लालसाका द्योतक है। उसमे वोह निराशा एवं कष्टसे ओत-प्रोत हस्‌रते (अभिलाषाएँ) नही जो आशिकोके दिलमे होती हैं। इसलिए उस्तादने अर्मानके बजाय हस्‌रत शब्द जड़ा है। "हस्‌रते भर गयी ऐ शौक! यहाँ तक दिलमे", हस्‌रतोंका दिलमे यहाँ तक भर जाना कि उन्हे बाहर निकलनेके लिए राह ढूँढ़नी पड़े। बनाकर उस्तादने मिसरेमें नगीना जड़ दिया है।

कैस[1]—ऐ सबा! रहने न दी कूचेमें उसके ख़ाक तक
और हवा ख़्वाही जताती है तू मुझ बर्बाद से

तस्लीम— ....

और हवा ख़्वाही का दम भरती है मुझ बर्बाद से

दोस्ती या वफ़ादारीका दम भरना मुहावरा है। 'दम भरने'के मुकाबिलेमे 'जताना' बहुत हल्का है। यूँ भी जब पहले मिसरेमे सबा (हवा) शब्द दिया गया है तो उसके लिए भरना शब्द लाजिमी था। क्योकि हवा भरी जाती है न कि जतायी जाती है। पहले मिसरेमें जब सबाको सम्बोधन किया गया है, तब दूसरे मिसरेमे 'तू' शब्द व्यर्थ था।

कैस—शबे-फ़ुर्क़त में हुई है, यह मिरी शक्ल महीब[2]
मलकुल मौत[3] मुझे देखके डर जाते हैं

तस्लीम—**शबे-फ़ुर्क़त में वोह सूरत है कि मरना मुश्किल**
....

उस्तादने दूसरे मिसरेमे "वह सूरत है कि मरना मुश्किल" बनाकर शेरको बहुत लालित्यपूर्ण बना दिया है।

---

१. मुशी गुरुप्रसाद साहब 'क़ैस' लखनवी। २. भयानक, डरावनी। ३. यमराज।

कैस—बासी होकर लुत्फ़ देती है फ़ज़ूँ[1] वक़्ते-सहर[2]
हलकी-हलकी भीनी-भीनी ख़ुशबू उनके हारकी

तस्लीम—बासी होकर और भी मलती है दिल वक़्ते-सहर
....

आज़ाद[3]—जिस दमसे तू चला है ग़ज़ालोंके सामने
भूले वो चौकड़ी तेरी चालोंके सामने

तस्लीम—चलता है जिस घड़ी तू ....
खाते हैं ठोकरें.............................. ......

आज़ाद—ज़मीं पै खींचके नक्शः मिरा मिटाते हैं
यह उनका खेल हुआ ख़ाकमें मिलाके मुझे

तस्लीम—..................... ....
यह खेल खेलते हैं .. ..

आज़ाद—किसीका हाय वोह कहना "मिरा पिये वो लहू
जो छेड़-छाड़ करे अब अकेला पाके मुझे"

तस्लीम—... ....पियो लहू मेरा
.. ..करो तुम.................... . ...

आज़ाद—वो कह रहे हैं—"ख़ुदा उस पै तू गिरा बिजली
बुरी निगाहसे जो सिम्त मेरे ताके मुझे

तस्लीम—....... ....उसका हो भला न कहीं
बुरी निगाहसे बैठा हुआ जो ताके मुझे

---

१. बहुत, ज़्यादा। २. प्रातःकाल। ३. काज़ी मुहम्मद नईमुल्हक़ 'आज़ाद' शैख़पुरी।

अमीर मीनाई-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८२८; मृत्यु १९०० ई०]

मुन्शी अमीर अहमद 'अमीर' लखनवी 'असीर' लखनवीके शिष्य थे, परन्तु हक तो यह है कि असीर नाम मुन्शीजीकी बदौलत चमका। कुछ दिनकी लगन और मेहनतके बाद आपकी ख्याति फैलने लगी। नवाब वाजिदअलीशाहने भी आपको सम्मानित किया। १८५७ के विप्लवके बाद आपको नवाब यूसुफअली खाँने रामपुर बुला लिया और बहुत आदर-सत्कारपूर्वक रखा। नवाब यूसुफअली खाँकी मृत्युके बाद नवाब कल्ब अली खाँने उन्हे अपना उस्ताद बनाकर सम्मानित किया। आप वहाँ अदालते-दीवानीके हाकिम भी थे। २४ बरस रामपुरमे प्रतिष्ठापूर्वक रहनेके बाद मिर्ज़ा दागके आग्रहपर हैदराबाद चले गये। किन्तु वहाँकी आबोहवा आपको रास न आयी और वही १९०० ई० मे समाधि पायी। जलील मानिकपुरी, रियाज़ खैराबादी, दिल शाहजहाँपुरी-जैसे ख्यातिप्राप्त आपके शिष्य हुए है। आप शाइर होनेके अतिरिक्त अरबी-फारसी और उर्दूके पूर्ण पण्डित, भाषाशास्त्र और शब्दकोशके प्रामाणिक अधिकारी और छन्दशास्त्रके योग्य विद्वान् थे। कई ग्रन्थ नष्ट हो जानेपर भी आपके २२ ग्रन्थ मिलते है।

रियाज़[1]—हंगामे-नज़्‌ए-गिरयः यहाँ बेकसीका था
आपो बताएँ कौन यह मौक़ा हँसीका था ?

अमीर—.. ....
तुम हँस पड़े यह कौन-सा मौक़ा हँसीका था ?

---

१. रियाज़ खैराबादी।

रियाजने सानी मिसरेमे आपहीके बजाय 'आपी' शब्द मजबूरन डाला होगा, क्योकि—'आप ही' से मिसरेका वजन बढता था। अत उस्तादने 'तुम हँस पड़े' बनाकर उक्त दोषको दूर कर दिया और रियाजके दूसरे मिसरेमे माशूक़के हँस पड़नेका कोई उल्लेख नही था। "कौन यह मौक़ा हँसीका था" कह कर केवल प्रश्न किया गया है। उस्तादने 'हँस पडे' बनाकर प्रश्नका सही कारण उपस्थित कर दिया है।

रियाज़—ज़रा रोको तमन्नाको तुम अपनी
यह मेरी जानके पीछे पड़ी है

अमीर—तमन्नाको तुम अपनी मन्ह: कर दो
....

इस्लाहका भाव स्पष्ट है।

रियाज़—ले उड़े गैसू परेशानी मिरी
आइने ले बैठे हैरानी मेरी

अमीर—.......... ....
....ले भागे .. ..

पहले मिसरेमे 'ले उड़े' था, अत. दूसरे मिसरेमे 'ले भागे' कहना लखनवी शाइराना मज़ाक़के लिए ज़रूरी था। रियाज़के सानी मिसरेमे 'ले बैठे' मे ज़मका पहलू था (अश्लीलताका आभास होता था) अत इस्लाहसे वह दोष भी दूर हो गया।

रियाज़—ख़ुदा तिरा बुते-नादाँ! दराज़ सिन तो करे
सितमके तू भी हो क़ाबिल ख़ुदा वो दिन तो करे

अमीर—..................बुते-कमसिन.......... ....
....

रियाजका उक्त शेर बहुत मशहूर है और बहुत उम्दा है। मगर उस्तादने भी उस्तादाना इस्लाह देकर शेरको चार-चाँद लगा दिये हैं। पहले मिसरेमें 'दराज़ सिन' (युवावस्था) से पूर्व कमसिन होना आवश्यक था। क्योंकि कमसिनीके बाद ही जवानी आती है।

रियाज़—तौब: बरलब न सही, हाथमें बोतल ही सही
महफ़िले-बाज़ में कुछ बाद:गुसार आये तो
अमीर—तौब: लबपर..
..

उर्दूमे फार्सी तरकीबका लाना उचित नही समझा जाता है। अत' उस्तादने 'बरलब' के स्थानपर 'लबपर' बनाकर शेरमे सादगी पैदा कर दी।

ज़ौ[१]—किस तरहसे बोसा[२] लूँ ज़ुल्फ़ें तो दुश्मन हो गयीं
ज़ुल्फ़ें उड़ पड़कर रुखे-रौशन[३] पै चिलमन[४] हो गयीं
अमीर—पर्दे-पर्दे में वो ज़ुल्फ़ें मेरी दुश्मन हो गयीं
उड़के उनके आरिज़े-रौशन पै चिलमन हो गयीं

ज़ौ के दोनो मिसरोंमें 'ज़ुल्फे' के होनेसे पुनरावृत्ति दोष था। 'बोसा' शब्द भी सुरुचिपूर्ण न था। 'उड़-पड' कर भी कानोंको खटकता था। उस्तादकी इस्लाहसे वे सब दोष भी जाते रहे और शेरका आशय भी वही रहा, बल्कि यह भाव और प्रकट हो गया कि माशूक़के मुखपर ज़ुल्फोंके आ जानेसे उसको अच्छी तरह नही निहारा जा सकता।

---

१. मुन्शी नईमुलहक़ साहब 'ज़ौ' शैख़पुरी। २. चुम्बन। ३. आभावान मुखपर। ४ पर्दा, नकाब।

ज़ौ—यादमें उस बुतके रोये इस क़दर हम फूट-फूट
पुतलियाँ आँखोंकी धो-धाकर बरहमने[1] हो गयीं

अमीर—............ .... रोयीं इस क़दर आँखें मिरी
पुतलियाँ दोनों नहा-धोकर बरहमन हो गयीं

'फूट-फूटकर रोना' मुहावरा है न कि 'रोये फूट-फूट' इसी तरह 'नहा धोकर' स्वच्छ (बरहमन) हुआ जाता है। धो-धाकर तो वस्त्र स्वच्छ किया जाता है। उक्त दोषोके दूर होनेके साथ ही इस्लाहसे शेरमे भाषालालित्य आ गया।

ज़ौ—रोते-रोते कोई दममें देखना डूबेंगे हम
अश्ककी मौजें उमड़कर ताब: गर्दन हो गयीं

अमीर—रोते-रोते इश्क़में आखिरको जी डूबा मिरा
....

आँसुओमे डूब जाना बहुत उपहासजनक उपमा है। ऐसे ही बेतुके असम्भव भावोके कारण लखनवी शाइरी काफी बदनाम हुई। अमीर भी लखनवी है, परन्तु आपने बहुत ख़ूबीसे 'इश्क़मे 'जी डूबा मिरा' बनाकर वास्तविकता ला दी है। आँसुओसे ही नही, किसी भी दु खपूर्ण घटनासे जी डूबने लगता है। ज़ौ के शेरमे रोनेका कारण नही था, उस्तादने इश्क़का शब्द डालकर रोनेकी वजह भी ज़ाहिर कर दी।

ज़ौ--सोज़िशे-दिल[2]का बुरा होवे कि मरने पर भी 'ज़ौ'
हड्डियाँ जल-जलके सुर्मा जेरे-मदफ़न[3] हो गयी

अमीर—किस ग़ज़बकी दिलमें सोज़िश थी कि मरने पर भी 'ज़ौ'
....

---

१. ब्राह्मण चूँकि नहा-धोकर स्वच्छ साफ रहता है, इसीसे यह उपमा दी गयी है। २. दिलकी आगका। ३. क़ब्रके अन्दर।

पहले मिसरेमे 'बुरा होवे' शब्द गँवारू था। उस्तादने उसे निकालकर सोजिशे-दिलके लिए 'किस गजबका' विशेषण चुनकर शेरको बहुत व्यथा-पूर्ण बना दिया। मुहावरा भी यही है कि "किस गजबकी आग लगी है" हड्डियाँ कब्रमे जलती नही सडती है, परन्तु सोजिशे-दिलकी गरमीके कारण वे जल-जलकर सुर्मा बन गयी।

ज़ौ—हल्की-हल्की बूए-गुल[1] लाना निसीम[2]!
बारे-ख़ातिर[3] हों न कमसिन[4] के लिए

अमीर—...
मेरे नाज़ुक तबअ[5] कमसिनके लिए

ज़ौ—दुख़्ते-रिज़[6] का कुछ; नहीं खुलता है हाल
है उछलती जाममें[7] किनके लिए?

अमीर—...
जाममें बेचैन है.............................

ज़ौ—फूटी नज़रों भी नहीं वे देखते
मुब्तिलाए-ग़म[8] है दिल जिनके लिए

अमीर—आँख उठाकर भी नहीं वे देखते
....

जौ साहबने 'फूटी नजरे' इस्तेमाल करते हुए न तो मुहावरेका ख्याल किया और न हकीकतका। नजर तो कभी फूटती नही, आँखे फूटती है और आँखे फूटनेपर नजरसे दीखना बन्द हो जाता है। माशूककी जब नजर या आँख फूट गयी तब न देखनेका उलाहना व्यर्थ है। "फूटी आँखो भी वह मुझे नही देखना चाहता" मुहावरा विरोधीके लिए इस्तेमाल

१, फूलोंकी सुगन्ध। २. वायु। ३. मनके विपरीत, चित्तपर बोझ। ४. कोमलांगी किशोरीके। ५. कोमलागी। ६. मदिराकी पुत्री। ७. सुरापात्रमें। ८. दुःखोंमें फँसा हुआ।

होता है न कि प्रियजनोके लिए। अत. उस्तादने पहले मिसरेमे 'फूटो नज़रो'के वजाय 'आँख उठाकर' बनाके उक्त दोष दूर कर दिये।

ज़ौ—चितवनने लिया है कि अदा ले गयी दिलको
यह वहम ग़लत, शर्मो-हया ले गयी दिलको

अमीर— ....
यह सब है ग़लत ....

वहमका तो अर्थ ही भ्रान्ति या गलत यकीन (भ्रामक धारणा) है। अत वहमके साथ 'गलत' शब्द व्यर्थ था। जौके पहले मिसरेमे चितवन और अदा दो शब्द आये है। अत दूसरे मिसरेमे एकवचन निकालकर 'सब' वहुवचन बना दिया।

हफ़ीज़[1]—बैठ जाता हूँ जहाँ छाँव घनी होती है
कुछ अजब चीज़ ग़रीबुलवतनी होती है

अमीर— ....
हाय क्या चीज़ ....

हफ़ीज़—दिनको इक नूर बरसता है मिरी तुरबतपर
शबको इक चादरे-महताब तनी होती है

अमीर— ....
रातको चादरे ....

हफ़ीज़—दावरे-हश्रसे[2] इंसाफतलब[3] है कोई
यह नदामत[4] है कि अंगुश्त ब-लब[5] है कोई

अमीर ....
सर झुकाये हुए ....

---

१. हाफ़िज मुहम्मद अली 'हफीज' जौनपुरी। २ हश्रके न्यायाधीशसे, खुदासे। ३. न्यायका इच्छुक। ४. पछतावा, अपराधके कारण होनेवाला सकोच। ५. दाँतोंमें उँगली दिये हुए।

हफ़ीज़—आस्माँ मैं भी तो नालोंसे हिला सकता हूँ
यह जो ख़ामोश हूँ इसका भी सबब है कोई
अमीर—आस्माँ आज भी नालों से...........................
मैं जो..

फ़िदा[1]—बुतो ! पछताओगे वीरान करके ख़ानए-दिलको
यह वोह काबा नहीं जो गिरके हो तामीरके क़ाबिल
अमीर—बुतो ! पछताओगे ढा कर हमारे काबए-दिलको
....

इमारते तामीर (निर्माण) की जाती है या ढायी जाती है। वीरान तो उद्यान किये जाते है। 'फिदा' के दूसरे मिसरेका 'गिरके' शब्द भी ढानेका संकेत करता है न कि वीरान करनेका। "वह कौन-सा काबा है जो गिरनेपर तामीर नही हो सकता"। सानी मिसरेके इस सवालका सबूत भी ऊले मिसरेमे नही था। उस्तादने पहले मिसरेमे ख़ानए-दिलके बजाय काबए-दिल बनाकर सबूत भी पेश कर दिया है।

ज़ाहिद[2]—इस तरह महफिलमें क्यों आये कि रुसवाई हुई
बाल बिखरे, मिस्सी छूटी, आँख शर्मायी हुई
अमीर—क्यों भरी महफिलमें यूँ आये कि रुसवाई हुई
....

१. शाहजादा मिर्जा वलीउद्दीन 'फिदा' खलफ साहिबे-आलम शाहजादा मिर्जा रहीमुद्दीन 'ह्या' देहलवी। २. सैयद जाहिद हुसेन 'जाहिद' सहारनपुरी।

[सूचना—हम यहाँ अपनी तरफसे इस्लाहोपर कुछ भी न कहेगे। क्योकि 'ज़ाहिद' के कलामपर स्वयं अमीर मीनाई साहब इस्लाह देनेकी वजह लिखते रहे है। अत इस्लाहके नीचे खुद उस्तादके लिखे हुए जुमले दिये जायेगे।]

सलासते-बयान (भाषा-माधुर्य्य) की गरज़से बदला गया। और कोई सुकम (दोष) नही था।

जाहिद—उफ ! वोह जोबन उभरा-उभरा, चाल इठलायी हुई
उबली पड़ती है जवानी जोश पर आयी हुई
अमीर—उफ ! तेरा जोबन यह उभरा..................
....

सलासते-बयानकी गरज़से बदला गया और कोई सुकम नही था।

ज़ाहिद—गुलमें जो तुम-सा नाज नहीं है, नहीं सही
अच्छा बिगड़ते क्यों हो, तुम्हीं नाज़नी सही
अमीर—नाज़ुक जो तुमसे फूल नहीं है, नहीं सही
....

गुलकी सिनफ (किस्म, लिंग भेदके कारण) नाज़ुक चाहिए। (न कि नाज) और 'तुम-सा नाजनी'की जगह 'तुम्हारा-सा नाज नी' चाहिए।

ज़ाहिद—तुम कहते हो कि ज़ाहिदों का काम यहाँ कहाँ ?
यूँ है तो मैं भी रिन्द हूँ, ज़ाहिद नहीं सही
अमीर—तुम कहते हो कि काम यहाँ ज़ाहिदों का क्या
....

जाहिदोका नून (अनुस्वार) दबता था। इसलिए बदला गया।

ज़ाहिद—दमे-बोसः हुई ख्वाहिश यहाँ तक
कि हमने लब तो लब, चूसी ज़बाँ तक
अमीरा—...............बढ़ी ख्वाहिश.........
....

मजमून माबादकी तरक्की (प्रथम अभिलाषाके बाद दूसरी इच्छा) 'बढी'से खूब जाहिर होता है।

ज़ाहिद—जब यह पूछा-"ध्यान क्या बिलकुल मिरा जाता रहा?
बोले झुँझलाकर कि—"हाँ जाता रहा, जाता रहा"
अमीर—जब कहा—"क्या ध्यान बिलकुल ही मिरा जाता रहा?

....

रवानी (प्रवाह) के लिए बदल दिया है।

ज़ाहिद—आह हमसे दोस्तों ने दुश्मनी की इस क़द्र
दोस्तोंकी दुश्मनीका सब गिलः जाता रहा
अमीर—दोस्तों ने दोस्त बनकर दुश्मनी की इस क़द्र

....

बयानमे सलासत (मधुरता) और बन्दिशमे जरा चुस्ती आ गयी और अल्फाज (शब्दो) का तनासुब (परस्पर मुनासबत) भी ठीक हो गया।

ज़ाहिद—तकाज़ा है कि "इक दिल और दो" और उसपै यह तुर्रः
कहीं से लाके दो, चोरी करो, चाहे कहीं ढूँढ़ो
अमीर—तक़ाज़ा है कि "इक दिल और दो हम लेके छोड़ेंगे"

....

'उस पै यह तुर्र' का मुकाम नही है। ऊले मिसरेकी तरमीमसे (हम लेके छोडेगे) माशूकाना जिद और मचलनेका इजहार हो गया।

ज़ाहिद—गया जो वक़्त उसे समझो गया, फिर कर नहीं आता
न पाओगे, न पाओगे कहीं, देखो कहीं ढूँडो
अमीर—गया जो वक़्त वोह फिरकर नहीं आता, नहीं आता

....

दूसरे मिसरेके 'न पाओगे, न पाओगे' के मुकाबलेमे पहले मिसरेमे 'नही आता, नही आता' की तकरार ज्यादा मुनासिब और मौज़ूँ है।

[सूचना—हम यहाँ अपनी तरफ़से इस्लाहोपर कुछ भी न कहेंगे। क्योकि 'ज़ाहिद' के कलामपर स्वयं अमीर मीनाई साहब इस्लाह देनेकी वजह लिखते रहे है। अत इस्लाहके नीचे खुद उस्तादके लिखे हुए जुमले दिये जायेंगे।]

सलासते-बयान (भाषा-माधुर्य्य) की गरजसे वदला गया। और कोई सुकम (दोष) नही था।

जाहिद—उफ ! वोह जोबन उभरा-उभरा, चाल इठलायी हुई
उबली पड़ती है जवानी जोश पर आयी हुई
अमीर—उफ ! तेरा जोबन यह उभरा..................
....

सलासते-बयानकी गरज़से वदला गया और कोई सुकम नही था।

ज़ाहिद—गुलमें जो तुम-सा नाज नहीं है, नहीं सही
अच्छा बिगड़ते क्यों हो, तुम्हीं नाज़नी सही
अमीर—नाज़ुक जो तुमसे फूल नहीं है, नहीं सही
.. ..

गुलकी सिनफ (किस्म, लिंग भेदके कारण) नाजुक चाहिए। (न कि नाज) और 'तुम-सा नाजनी'की जगह 'तुम्हारा-सा नाज नी' चाहिए।

ज़ाहिद—तुम कहते हो कि जाहिदों का काम यहाँ कहाँ ?
यूँ है तो मैं भी रिन्द हूँ, जाहिद नहीं सही
अमीर—तुम कहते हो कि काम यहाँ जाहिदो का क्या
....

जाहिदोका नून (अनुस्वार) दवता था। इसलिए वदला गया।

ज़ाहिद—दमे-बोस: हुई ख़्वाहिश यहाँ तक
कि हमने लब तो लब, चूसी ज़बाँ तक
अमीरा—' ' .. .. बढी ख़्वाहिश.... . ...
....

मज़मून माबादकी तरक्की (प्रथम अभिलाषाके बाद दूसरी इच्छा) 'बढी'से खूब जाहिर होता है।

ज़ाहिद—जब यह पूछा-"ध्यान क्या बिलकुल मिरा जाता रहा?
बोले झुँझलाकर कि—"हाँ जाता रहा, जाता रहा"
अमीर—जब कहा—"क्या ध्यान बिलकुल ही मिरा जाता रहा?
....

रवानी (प्रवाह) के लिए बदल दिया है।

ज़ाहिद—आह हमसे दोस्तों ने दुश्मनी की इस क़दर
दोस्तोंकी दुश्मनीका सब गिलः जाता रहा
अमीर—दोस्तों ने दोस्त बनकर दुश्मनी की इस क़दर
....

बयानमे सलासत (मधुरता) और बन्दिशमे जरा चुस्ती आ गयी और अल्फाज (शब्दों) का तनासुब (परस्पर मुनासबत) भी ठीक हो गया।

ज़ाहिद—तकाज़ा है कि "इक दिल और दो" और उसपै यह तुर्रः
कहीं से लाके दो, चोरी करो, चाहे कहीं ढूँढ़ो
अमीर—तकाज़ा है कि "इक दिल और दो हम लेके छोड़ेंगे"
....

'उस पै यह तुर्रः' का मुकाम नही है। ऊले मिसरेकी तरमीमसे (हम लेके छोडेगे) माशूकाना जिद और मचलनेका इजहार हो गया।

ज़ाहिद—गया जो वक़्त उसे समझो गया, फिर कर नहीं आता
न पाओगे, न पाओगे कहीं, देखो कहीं ढूँडो
अमीर—गया जो वक़्त वोह फिरकर नहीं आता, नहीं आता
....

दूसरे मिसरेके 'न पाओगे, न पाओगे' के मुकाबलेमे पहले मिसरेमे 'नही आता, नही आता' की तकरार ज्यादा मुनासिब और मौज़ूँ है।

ज़ाहिद—जिन्हें शौक़े-नामो-निशान था,
यही फ़िक्र थी, यही ध्यान था
उन्हें यूँ फ़लकने मिटा दिया,
न निशान है न मज़ार है
अमीर—जिन्हें शौक था कि निशाँ रहे, कोई यादगारे-मकाँ रहे
....

इजाफतकी हालत (शौके-नामो-निशान) मे एलाने नून (नकार) जाइज नही।

ज़ाहिद—शब हो चुकी पीरीकी, नुमायाँ है सहर भी
उट्ठो कहीं 'जाहिद' कि है दरपेश सफर भी
अमीर— ....
वेदार हो ....

'वेदार हो' कहना ज्यादा सही मकाम (उपयुक्त) है और दूसरे मिसरेमे उट्ठोके साथ 'कही' वेजरूरत (व्यर्थ) था।

ज़ाहिद—गो खुश हूँ यह सुनकर कि है "तुमसे भी मुहब्बत"
नश्तरसे सिवा कर गयी है काम 'मगर' भी
अमीर—गो खुश हूँ यह सुन कर—"हमें तुमसे भी है उल्फत"
....

बन्दिश जरा साफ हो गयी। इसलिए वदल दिया, वर्ना और कोई ऐव नही था। शेरकी रदीफ (भी) ने क्या लुत्फ दिया है? वारिक अल्लाह (खुदा वरकत दे, शावास)।

ज़ाहिद—वो कहके 'मगर' चुप दमे-इकरार हुए है
कुछ कम नहीं इन्कारसे उनकी यह 'मगर' भी
अमीर—वे चुप दमे-इक़रार 'मगर' कहके हुए है
....

काफियेने क्या लुत्फ दिया है सुब्हान अल्लाह।

ज़ाहिद—यूँ अयाँ तरदामनीसे पाक दामानी हुई
मै भी पी तो जामए-अहरामसें छानी हुई

अमीर—यूँ बहम तर दामनी से पाक दामानी हुई[1]
....

ज़ाहिद—है अगर ग़ैरत, न आयेगी हया फिर वस्लमें
रात उस ना ख़्वान्द: मेहमाँ की वोह महमानी हुई

अमीर—बा-हया है तो.......................... ....
....

तरकीब ज़रा साफ हो गयी, और लफ्जी तनासुब भी हो गया।

जाहिदके अशआरपर की गयी उक्त इस्लाहोके चन्द नमूने देनेके बाद अमीर मीनाईके अन्य शिष्योके कलामपर इस्लाहे दे रहे है। 'जाहिद'को दी गयी इस्लाहोपर ख़ुद अमीर मीनाई साहबने इस्लाह देनेकी वजह बयान कर दी है। अन्य शिष्योकी इस्लाहोपर आवश्यकतानुसार हम प्रकाश डालेगे।

बरहम[2]—निकलती ही नहीं दिलसे यह ज़ालिम
नज़र अन्दाज़से ऐसी गड़ी है।

अमीर—........ ....
निगाहे-यार कुछ ऐसी लड़ी हैं

---

१. तरदामानी (सुरापान से भीगे वस्त्र) और पाकदामनी (सच्चरित्रता) परस्पर मिल गये। २. हकीम बरहम साहब एडीटर और मालिक अखबार 'मशरिक़' गोरखपुर।

वरहमके शेरमे यह स्पष्ट नही था कि किसकी नज़र अन्दाजसे गडी है ? उस्तादने दूसरे मिसरेमे निगाहे-यार डालकर भाव स्पष्ट कर दिया और दोनो मिसरोमे परस्पर रब्त भी क़ायम हो गया ।

वरहम—बहुत क़रीब मगर है बहारका मौसम
कली-कली मेरे दामनकी मुस्कराई है
अमीर—बहुत करीब है शायद बहारका मौसम
....

'मगर' के बदलेमे 'शायद' ने शेरको चमका दिया है ।

आबिद[1]—दिल क्या दिया है पहलूसे नक़्दे-वफा दिया
हम खुद बिगड़ गये, मगर उनको बना दिया
अमीर—दिल क्या दिया खज़ानए-नक्दे-वफा दिया
....

पहलूमे दिल तो होता है, वह दिया भी जाता है। मगर जब 'नक्द' शब्द प्रयुक्त हुआ तो उसके लिए खज़ाना लाजिमी था ।

आबिद—सबब न पूछो कलेजे पै दाग़ खानेका
नतीजा है यह हसीनोंसे दिल लगानेका
अमीर—.. ....
यह फल मिला है हसीनों से दिल लगानेका

आबिद—निकला है अभी मेरा जनाज़ा
यह भी कोई वक़्त है खुशीका ?
अमीर—है आँखोंके सामने मेरी लाश
....हँसीका

१. आबिद हुसेन 'आबिद' सहसवानी ।

इस्लाहमे आँखके सामने लाश दिखायी गयी है और दूसरे मिसरेमे बजाय ख़ुशीके 'हँसा' शब्द बनाया है। 'आबिद' के शेरमे ख़ुशीका प्रमाण नही था। अब 'हँसी'से शेरमे यह मायने पैदा हो गये कि मेरी लाश आँखोके सामने है, फिर भी तुम हँस रहे हो। यह वक्त हँसीका नही है। हँसी आना स्वाभाविक है। ख़ासकर कमसिन या शोख़ माशूककी यह एक अदा है कि उसे बात-बेबातपर हँसी आये। उसी हँसीसे आशिक दिलमे मगन होता है। प्रकटमे उलाहना देता है। हँसी तो बगैर किसी साधनके आ जाती है, परन्तु ख़ुशी मनानेके लिए कुछ साधन जुटाने पडते है। उपक्रम करने पडते है। जैसे चिराग जलाना, मिठाई बाँटना, महफिल सजाना आदि। और ख़ुशीके उल्लेखके साथ आबिदके मिसरेमे उक्त साधनोका कोई जिक्र नही था।

आबिद—थाम कर हम जिगरको बैठ गये
तुमने जब आँख उठाके देख लिया
अमीर—हम कलेजा पकड़के बैठ गये
....

आबिद—ख़बर कुछ ऐसी सुनाई है जाके हैरत नाक
कि नामाबर उन्हें, वे नामाबरको देखते हैं
अमीर—बहम[1] हुई है ख़ुदा जाने गुफ़्तगू[2] कैसी ?
...

कासिद-द्वारा हैरतनाक ख़बर सुनानेपर उनका तो हैरतमे आकर नामाबरको देखते रह जाना स्वाभाविक हो सकता था। लेकिन ख़बर सुनानेवाला नामाबर स्वयं क्यो उन्हे आश्चर्यचकित देखता रह गया। आबिदका भाव स्पष्ट नही होता था। लेकिन उस्तादने इस्लाह देकर

१ परस्पर। २. बातचीत।

शेर बामायनी और बुलन्द बना दिया। नामावर और माशूकमे न जाने परस्पर क्या बातचीत हुई कि दोनो आश्चर्यचकित होकर एक दूसरेको देखे जा रहे हैं।

आबिद—नज़अके[1] वक़्त कोई ग़ैर न पहचानेगा
मौतके पर्दे में कर जाओ अयादत[2] मेरी

अमीर— ....
.. ..भेसमें .. ..

पर्देके एवज़मे 'भेस' ने शेरमे क्या लुत्फ पैदा कर दिया बतानेकी जरूरत नही।

आबिद—जिसने पहलूसे दिल चुराया था
अब वोह आँखें चुराये जाता है

अमीर—इसने ....
यह जो ....

उस्तादने इस्लाह क्या दी तस्वीर खीच दी है।

आबिद—नामः हमारा देखके उसने अताबमें
क़ासिदका सर उतारके भेजा जवाबमें

अमीर—............... .. ..
क़ासिद के हाथ काट के भेजे जवाब में

सर उतारना भी यद्यदि ठीक था, किन्तु पत्र हाथो-द्वारा दिया गया है। अत सरके एवज हाथ काटना, ज्यादा मुनासिब और मौज़ूं है।

---

१. मृत्यु समय। २ हाल पूछना, बीमारकी मिज़ाजपुर्सी करना।

कौसर[1]—बन्द महरमके[2] न कसकर बाँधो
देखो यह फ़ित्ने उभर आयेंगे

अमीर—............................ ....
और यह...................................

'देखो' के बजाय 'और' (अधिक) ने फ़ित्ने उभरनेवाले भावको बहुत उभार दिया है।

कौसर—कहा जो उनसे—"इनायत कभी-कभी होगी ?"
बिगड़के बोले—"अगर जान पर बनी होगी"

अमीर—....... ....
तो हँसके बोले कि "जब जानपर बनी होगी"

'बिगड़ने'के बजाय 'हँसके बोले'ने लुत्फ पैदा कर दिया। आशिक-की जानपर बनी हो, वह विरह-यन्त्रणासे मृत्यु-मुखमे पहुँच रहा हो, ऐसे सुअवसरकी कल्पनासे जालिम माशूक बिगडनेकी बजाय हँसेगा। 'अगर'के बजाय 'जब'से इनायत होनेकी एक अवधि निश्चित हो गयी।

कौसर—कसर न रोनेमें ऐ चश्मे-तर ! उठा रखना
ज़रा जो थम गये आँसू तो किरकिरी होगी

अमीर—झपक न जाये मिरी आँख अब्रे-तरसे कहीं
........................आँसू बड़ी हँसी होगी

'अब्रेतर'से रोती आँखकी तुलना बहुत खूब है। किरकिरीके बजाय रोनेके मुकाबिलेमे हँसी रखना क्या लुत्फ दे रहा है। रोने-हँसनेका चोली-दामनका साथ है।

---

१. हकीम आबिद अली 'कौसर' खैराबादी। २. अँगियाके।

कौसर—कभी तो बैठेंगे ज़ानू दबाके ख़िलवतमें
　　वोह दिन भी आयगा, उनसे खुली दिली होगी

अमीर—कभी तो बीचसे उठेगा शर्मका पर्दा
　　कभी तो उनकी मेरी बेतकल्लुफी होगी

उस्तादने पूरा शेर बदलकर शौकके आशयको स्पष्ट कर दिया।

कौसर—मिरी तरह मिरी शमए-लहद[1] भी रोती है
　　तमाम उम्रमें शायद कभी हँसी होगी

अमीर—...... . . ..
　　मुझे तो याद नहीं है कभी हँसी होगी

कौसर—हमारे हाथोंने लूटी है वस्लकी दौलत
　　जरूर शर्मो-हया उनको कोसती होगी

अमीर—शरारतोंसे जलाया है वस्लमें उनको
　　जरूर उनकी हया हमको कोसती होगी

कौसर—इकरारे-वस्लपर वे ढिठाई से कहते हैं—
　　"सोहाने-रूह[2] हो गया, इक़रार क्या हुआ"?

अमीर—जब अहदे-वस्ल याद दिलाता हूँ मैं उन्हें
　　कहते हैं "मेरी चिढ़ हुई इकरार क्या हुआ"?

माशूक़ तो माशूक सर्वसाधारण भी वार-बारके तक़ाज़ोसे चिढने लगता है।

---

१. क़ब्रपर जलनेवाली मोमबत्ती। २. प्राणोंको रेतनेवाला यन्त्र।

कौसर—नज़्ज़ारए-जमालसे[1] ग़श खाके गिर पड़े
तुमको ख़बर नहीं सरे-दरबार क्या हुआ

अमीर—मूसा नक़ाब उठते ही ग़श खाके गिर पड़े
पूछा तो होता "तालिबे-दीदार[2] क्या हुआ ?

कौसरके मिसरेसे यह स्पष्ट नही होता है कि नज्जारए-जमालसे कौन गश खाकर गिर पड़ा। उस्तादने 'मूसा' के इजाफेसे वह दृश्य उपस्थित कर दिया जो कि अल्लाहके नज़्ज़ारए-जमालसे मूसाके साथ घटा था। दूसरे मिसरेकी इस्लाहने तो शेरको बहुत चमका दिया। उन्हे देखकर आशिक गश खाकर गिर पडा और वे यूँ ही बग़ैर कुछ पूछे निकल जाये, उपेक्षाकी हद है। लोग-बाग उन्हे यह तो उलाहना देगे ही—"पूछा तो होता तालिबे-दीदार क्या हुआ ?"

कौसर—आँखोंसे मिस्ले-बाग़े-इरम[3] छुप गया न हो
खुलता नहीं है आज दरे-यार क्या हुआ ?

अमीर—खिलवत[4] है किससे ? ला तो ख़बर ऐ निगाहे शौक़ !
खुलता नहीं जो आज.................................

यारका दरवाज़ा बन्द है, वह आज खुल नही रहा है। यह तो कौसर भी कहते है। फिर बागे-इरमकी तरह वह छिप (लुप्त) न गया हो यह आशंका करना बेमायनी है। उस्ताद दरवाज़ा न खुलनेका कारण समझते है। इसलिए वे निगाहे-शौक़को खबर लानेके लिए आदेश देते

---

१. सौन्दर्य देखनेसे। २. मुख देखनेका अभिलाषी। ३. बागे-इरम, स्वर्गका उद्यान, जो सद्दाद नामक अत्याचारी बादशाहने बिहिश्तके मुक़ाबिलेमें बनवाया था। वह स्वयको ख़ुदा कहलवाता था। ४. एकान्त मिलन।

है। ताकि मालूम हो सके कि माशूक़ आज दरवाजा बद किये किसके साथ एकान्तमे है।

कौसर—चस्का पड़े शराबका वाइज़को तो कहूँ
"बन्दा नवाज़ ! बरसोंका इन्कार क्या हुआ ?"
अमीर—तौबाकी तरह टूट पड़े मै पै शैखजी
वोह इत्तिका को पास वोह इन्कार क्या हुआ ?

दिल[2]—क़ैस[3] ! पहुँचा है दूर नाक़ः[4] सवार
गर्द भी अब नज़र नहीं आती
अमीर—क़ैस ! क्या देखता है नाक़:को ?
....

"क्या देखता है" इस्लाहसे वही मुहावरा-भरी निराशा झलकती है—"अब पछताये का होत है जब चिडिया चुग गयी खेत।"

दिल—मुझ-से बीमारपर यह ज़ुल्मो-सितम !
शर्म ऐ चारागर ! नहीं आती
अमीर—मुझ-से बीमारपर यह ज़ुल्म अफसोस
....

पहले मिसरेमे उस्तादने सिर्फ सितम निकालकर अफसोस बना दिया है। क्योकि सितम शब्द फालतू था। ज़ुल्म और सितम समानार्थक है उसके बजाय अफसोस रख देनेसे मरीजे-इश्ककी मनोव्यथा और भी साकार हो उठी है।

---

१ सयमका। २ अमीर हसनखाँ साहब 'दिल' शाहजहाँपुरी। ३. मजनूँ। ४ ऊँटनी सवार (लैली)।

दिल—निकल जायेंगे इस तरह मेरे अरमाँ
कोई आह बनकर कोई जान बनकर

अमीर—निकल जायेंगे रफ़्तः-रफ़्तः सब अरमाँ
... .

'इस तरह' के बजाय 'रफ्त.-रफ्त' बहुत उपयुक्त और बा-मुहावरा है।

जलाल लखनवी-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८३३ ई०; मृत्यु १९०९ ई०]

सैय्यद जामिन अली 'जलाल' ने उर्दू-फार्सीकी शिक्षा समाप्त करके खान्दानी पेशा हकीमी शुरू किया। शाइरीका शौक वचपनसे था। धीरे-धीरे इस तरफ इतनी रुचि वढी कि शाइरीको ही आजीविका वना लिया, और उस्तादीका मर्त्तवा हासिल किया। वकौले नियाज़ फतहपुरी—

"जलाल न सिर्फ फनका वादशाह था, वल्कि जज्वात निगारी (अन्तरंग भाव-प्रदर्शन)का मालिक था। आपकी गज़लोके चार दीवान और ७-८ ग्रथ विविध विपयोके मिलते है।

आर्ज़ू[1]—पाया न शाइवो[2] भी उस गुलके रंगो-वू का
सब्ज़ेने ज़हर खाया, लालेने खून थूका

जलाल—............... . ...
....उगला.................. ....

उस्तादने सिर्फ खायाके वजाय उगला रख दिया है। खून थूकनेकी मुनास्वतके लिए 'उगला' शव्द ही उचित था। इस तनिकसे परिवर्तनसे शेर वहुत वुलन्द हो गया।

---

१. अनवर हुसेन साहव 'आर्ज़ू' लखनवी। २. लवलेश, तनिक।

एहसान[1]—नज़अ़का वक़्त है जुदा क्यों हो
हम तो मरते हैं तुम ख़फ़ा क्यों हो
जलाल—नज़अ़के वक़्त भी जुदा क्यों हो
....

एहसान—आह खींचूँगा मैं, वे ज़ुल्म करें
मेरी जानिबसे इब्तदा क्यों हो
जलाल—आह खींचूँगा तुम सितम तो करो
....

एहसान—मुझसे यह कह रही है, मिरी आर्ज़ूए-वस्ल
"वो बुत है लाजवाब करोगे सवाल क्या ?"
जलाल—मुझसे यह पूछती है...... ....
....

एहसान—टूटे पड़े हैं शीशः-ओ-साग़र इधर-उधर
मैख़ानेमें चले हैं वो मस्तानः चाल क्या
जलाल— ....
मैख़ानेमें वे चल गये ... .

1. मुहम्मद एहसान अलीख़ाँ साहब 'एहसान' शाहजहाँपुरी।

मिर्ज़ा दाग़-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८३१; मृत्यु १९०५]

मुकर्रबुल सुल्तान, बुलबुले-हिन्दोस्ताँ, जहाँउस्ताद, नाजिमयार जंग, दबीरुद्दौला, उस्ताद फसीहुलमुल्क, मिर्ज़ादाग देहल्वी, गजलगो शाइरोके ईमाम कहे जाते थे। भारतवर्षके कोने-कोनेमे लगभग दो हजार आपके शिष्य थे। जिनमे नवाव हैदरावाद, सर इक़्वाल, सीमाव अकवरावादी, जोश मलसियानी, नसीम भरतपुरी, नव्वाव साइल, आगाशाइर किज़्लवाश, वेख़ुद देहल्वी, वेख़ुद वदायूनी, नूहनारवी-जैसे ख्यातिप्राप्त शिष्य हुए है। कुछ शिष्य आपकी सेवामे उपस्थित रहकर, शेप पत्र-व्यवहार-द्वारा इस्लाह लिया करते थे। आपके इस्लाह करनेका तरीका क्या था इस सम्बन्धमे सज्जादा साहव लिखते है—

"उस्ताद 'दाग'के पास तलामज (शिष्यो) का एक वाक़ायदा रजिस्टर रहता था जिसमे नाम, पता, तारीख़ वसूलखत और जवाव भी दर्ज किये जाते थे। दागके हज़ारो शागिर्द थे। मैं पहले दागका गायवाना (परोक्ष रूपसे) शागिर्द हुआ। उस वक्त मेरी उम्र १८ सालकी होगी। कुछ अर्सेके वाद मैं हैदरावाद गया। एक तक़रीव (उत्सव) मे नवाव शम्सुलमुल्क जफर जंगने मेरा 'दाग'से तआर्रुफ कराया तो 'दाग' ने फौरन पहचान लिया कि आप वही है जिनकी गज़ले इस्लाहके लिए वेदरसे आती है। वहुत ख़ुलूस और मुहव्वतसे मिले। उसके वाद जव भी मैं वहाँ जाता, उस्तादसे जरूर मिलता। इस्लाह भी लेता। इस्लाहका तरीका यह था कि शागिर्द ख़ुद अपनी गज़ल पढकर सुनाता या कोई और मुमताज (योग श्रेष्ठ) शागिर्द पढता। अकसर एहसन मारहरवी पढा करते थे। तलामज (शिष्य लोग) वक्ते-मुक़र्ररपर अमूमन

सुबहके वक्त जमा हो जाते। यके बाद दीगरे (एकके बाद दूसरे) शागिर्दे-की गजले पढ़ी जाती। एक शेर पढनेके बाद तलामज.से सवाल किया जाता कि बतलाओ, इस शेरमे क्या नुक्स है? हर एकके इज़हारे-ख़यालके बाद उस्तादकी राय और इस्लाह मुसल्लिम (पूर्ण प्रामाणिक) समझी जाती थी। उस वक्त मुहावराबन्दी, सलासते-ज़बान (भाषाका प्रवाह माधुर्य) और रोज़ मर्रहके इस्तेमालमे आनेवाली ज़बानका ज़्यादा खयाल रखा जाता और तलामजःको न सिर्फ़ इसकी सख़्त ताकीद थी, वल्कि उसी वक़्त बिल मुशाफह (अपने सम्मुख) सही इस्तेमाल करना सिखाया करते थे।

"इसका असर यह हुआ कि हज़ारो हैदराबादी तलामज़ए-दाग़ ज़बानकी सफाई, मुहावराबन्दी और सलासतमें अहले ज़बानसे पीछे न रहे। गोया हैदराबाद उस वक्त जनूबी हिन्द (दक्षिण भारत) का जबरदस्त मरकज़े-उर्दू (उर्दूका महान् केन्द्र) बना हुआ था, जहाँ न सिर्फ हैदराबाद बल्कि सूबा मदरास और बंगलौर वगैरहके अशख़ास (व्यक्तियों)ने दागकी शागिर्दीसे फ़ायदा उठाया"।[1]

अफसर उलशुअरा हज़रत आगशाइर किज़लबाश देहल्वी लिखते है—

उसी ज़मानेमे हैदराबादमे होनेवाले एक मुशाअरेकी तरह थी—

झलक मेरे लिए, कसक मेरे लिए

मैंने भी हस्ब मामूल कुछ शेर उसी जमीनमे लिख लिये। मगर एक मिसरा ऊला (पहला मिसरा) ऐसा पैदा हो गया कि मैं मर-मर गया, मगर किसी तरह दूसरा मिसरा बहम न पहुँचना था, न पहुँचा।

---

१. निगार जनवरी–फ़रवरी १९५३ ई०, पृ० ११५।

आख़िर उसी तरह व-गरज़ इस्लाह उस्तादके पास हाज़िर हो गया। मगर आज उस्ताद बिल्कुल जर्रोंमे आफताव (धूलकणोमे सूर्य)की तरह नुमायाँ थे। ऐनसदरमे एक खूबसूरत पलगडी बिछी थी। गर्द-ओ-पेश सफेद चाँदनीका बुर्राक (धवल) फर्श था। उसपर तलामज. (शिष्य वर्ग) आपको कालबुद फीउल नजूम हल्क किये (चारो ओर घेरे हुए) थे। मैंने सलाम किया और पायँतेकी तरफ आपके कदमोमे जगह लेकर वैठ गया और भाइयोकी इस्लाहे होती रही। उस्तादका कायदा यह था कि एक साहव अपनी गज़ल पढते, सारा मजमा सुनता। फिर जो मिसरा मुतनाज़ाफी (विवादास्पद) होता, उसीपर सव मिलकर मिसरा लगाते। जिसका मिसरा उस्ताद पसन्द फर्माते, वस वही मिसरा लिख दिया जाता। मगर मैं इस किस्मकी इस्लाहका हरगिज़ रवादार नही था, कि मैं मजमोमे व-हर इस्लाह गज़ल पढूँ और उस्तादके सिवा कोई और साहव भी उसमे ख्वाहम-ख्वाह लुकम' (दख्ल) दें। इसलिए मैं कभी ऐसे वक़्त इस्लाहके लिए जाता ही नही था। मगर आज मुझपर बुरी वनी थी। उसपर भी मैं देर तक खामोश वैठा रहा। जव मैं चलनेके मक्सदसे उठा तो उस्तादने खुद ही फर्माया—"क्यो क्या तुमने इस तरह मे अभीतक कुछ नही लिखा ?"

मैं—लिखे तो कई शेर हैं, मगर उस्ताद ! एक मिसरा ऊला ऐसा टेढा आ पड़ा है कि उसे छोडनेको जी भी नही चाहता और दूसरा मिसरा भी नही होता। फर्माया—"अच्छा मिसरा तो पढ़ो"

मैंने उस वक्त अर्ज़ किया—

मुज़्दहे-वहशत है गुञ्चोंकी चटक मेरे लिए

यह ज़मीन है इसपर मेरा एक मिसरा ऊला यह हो गया है—

आँख लगती है ख़याले-नोके-मिज़गाँमें कहाँ ?

अब मिसरा सानी (दूसरा) मुझसे तो ऐसा नही होता। उस्ताद दुहराकर—

आँख लगती है ख़याले-नोक..............

"फिर अब क्या चाहते हो ? क्या खटक मेरे लिए," मैं ख़ामोश बैठा रह गया। हज़रत लेटे-लेटे फ़िक्र फर्माने लगे। इतनेमे एक साहब बोल उठे—

आँख लगती है ख़याले-नोके-मिज़गाँ में कहाँ ?
रात-दिन क़िस्मतमें लिक्खी है खटक मेरे लिए

फौरन शोर वर्पा हो गया। 'आ-हा-हा खूब मिसरा लगाया। भई वाह मिसरा छीन लिया' फिर भी मैं उसी तरह गर्दन झुकाये बैठा रहा। शायद हाज़रीनको नागवार हुआ हो। मगर उस्ताद बराबर फिक्र करते रहे और उन्होने लेटे-ही-लेटे थोड़ी देरमे फ़र्माया देखो भई—

आँख लगती है ख़याले-नोके-मिज़गाँ में कहाँ
तीर-बारानी है पलकोंकी झपक मेरे लिए

इसपर तो छते उड़ गयी। वाह-वाह, सुब्हान अल्लाहके नारे बुलन्द हुए। मगर मै फिर उसी तरह पत्थरका बना बैठा था। उस्तादने निहा-यत गैज (क्रोध) से मेरी तरफ देखा और बेचैन होकर उठ बैठे। मैंने डरकर गावतकिया कमरसे लगा दिया और उस्ताद फिर गौर करने लगे। चन्द मिनटके बाद फ़र्माया—

आँख लगती है ख़याले नोके-मिज़गाँ में कहाँ
तीरके पैकाँ हैं, पलकोंकी खटक मेरे लिए

फिर शोरिश हुई, 'बस साफ़ हो गया, बिल्कुल साफ़' मगर मै बदबख़्त फिर उसी तरह बैठा था। यह देखकर उस्तादने बा-आवाज़

बुलन्द हाज़रीनको सरजिनश फ़र्मायी (फटकार लगायी)।

"खामोश रहिए साहब, आप लोग खामोश रहिए। यह मेरा उनका मुआ़मला है, वह अगला तो मुँहसे फूटता ही नही।" इतना कहकर फिर उन्होने पहलू बदला और मैने दूसरी तरफ तकिया लगा दिया। अव वह फिर मुझसे मुख़ातिब हुए। मियाँ तुम भी तो कुछ जोर लगाओ।

मैने कुसूरवारोकी तरह निहायत आजिज़ाना उनकी तरफ देखा। और फिर सर झुकाकर कहा—"उस्ताद! आँख लगती है खयाल ···· इसका दूसरा मिसरा मै ऐसा ही चाहता हूँ।" अब तो हाजरीनकी सिट्टी गुम हो गयी। मगर आफरीन है उस मरहूम सुखन-गोको वह फिर फिक्रमे मुश्तगर्क (लीन) हो गये। अबके बडी देर तक गौर करते रहे। यकायक मेरी तरफ मुस्कराकर देखा और फर्माया—

आँख लगती है ख़यालेनोके-मिज़गाँमें कहाँ
बर्छियाँ खानी हैं झपकानी पलक मेरे लिए

वस यह सुनना था कि मैं पाँयती तो बैठा ही था, दौड़कर उनके कदम चूम लिये। ऐ कुर्बॉन! इस्लाह यह कि एक मिसरा मुबहम (अस्पष्ट)-सा मैंने बका और दूसरा मिसरा लगाकर नवाब फ़सीहुलमुल्क मरहूमने सारा शेर बा-माअ़नी कर दिया। अल्लह-अल्लह क्या उस्ताद वे बदल था। यह चीज है इस्लाह और यह अब इस दुनियासे मफकूद (नापैद) हो चुकी है—

उठ गये हैं इस जहाँसे कैसे-कैसे बा-क़माल
जिन दमाग़ोंकी तरावश इक नया इलहाम था[1]

अब चन्द शिष्योके कलामपर दागकी इस्लाहे दी जा रही है—

---

१ पहले जमानेकी दिल्ली, पृ० २०७-११।

आसफ़[1]—चेहरेसे उनके रंग जो टपका अताबका
क्या हो चला है रंग गुलाबी नक़ाबका
दाग़—छुपता नहीं छुपायेसे चेहरा अताबका
होता चला है..................................

चेहरेसे अताब (नाराजी, क्रोध) का रग टपकता नही, झलकता है। छिपानेका प्रयास करनेपर भी चेहरेपर झलक जाता है। इसी वास्तविकताको उस्तादने—'छुपता नही छुपायेसे' बहुत सलीकेसे प्रकट किया है। दूसरे मिसरेमे 'क्या हो चला'के बजाय 'होता चला' इस्लाह देकर मतलेको बहुत बुलन्द बना दिया है।

अहसन[2]—देखनेके लिए आया है ज़माना उसको
इक तमाशा है मुसाफिर भी सफरसे पहले
दाग़—...... .. . .आता है.... .. ..
. ...

केवल 'आया' है के बजाय उस्तादने 'आता' है बनाया है, किन्तु इस तनिक-से परिवर्तनसे ही शेर चमक उठता है। मुसाफिरको सफरके वक्त (मनुष्यको मरते समय) देखनेवाले तमाशाई हमेशा आये है और हमेशा आते रहेगे। 'आया है' शब्दसे केवल वर्त्तमानके लिए तमाशाइयोका आना-जाना सीमित हो गया था। 'आता है' शब्दसे स्पष्ट हो जाता है कि तमाशाई सदैव आये है और सदैव आते-जाते रहेगे।

अहसन—नहीं उठतीं, नहीं मिलतीं, नहीं खुलती आँखें
शर्म है, नशः है, या नींद तुम्हें आयी है?
दाग़—नहीं खुलतीं, नहीं उठतीं, नहीं मिलतीं आँखें
....

---

१. हिज हाईनेस मीर मुहम्मद अलीख़ाँ 'आसफ' सुल्तान हैदराबाद।
२. सैयद अली अहसन साहब 'अहसन' माहरहरवी।

उस्तादने एक भी शब्दका इज़ाफ़ा नही किया है। केवल अहसनके ऊले मिसरेका क्रम बदल दिया है। अहसनने अपने ऊले मिसरेमे वात उल्टे-पल्टे ढंगसे कही थी। उस्तादने क्रम बदलकर वही मनोभाव ठीक ढंगसे प्रकट कर दिया। यानी शुरूमे आँखोका खुलना ज़रूरी है, खुलनेके वाद ही किसीको देखनेके लिए उठ सकती है और फिर उठनेके वाद ही आँखोका मिलना हो सकता है।

अहसन—किसी दिन वेखुदीमें जा पड़े थे उनके सीनेपर
वस इतनी-सी ख़तापर हाथ कुचले उसने पत्थरसे

दाग़—....... ..... जा पड़ा था ....
.... हाथ कुचला ....

उस्तादने दोनो मिसरोमे वहुवचनको एकवचन वना दिया है। ज़ाहिरामे अहसनके शेरमे कोई नुक़्स मालूम नही होता। लेकिन गौर करनेपर ज़ाहिर होता है कि दोनो हाथ सीनेपर जा पडे, तभी तो दोनो हाथ कुचल दिये गये। और वेखुदी (असावधानी)मे एक ही हाथ सीनेपर लग सकता था। दोनो हाथ तो वेखुदीमे नही, जान-बूझकर ही सीनेपर डाले जा सकते है। असावधानीमे हुए अपराध और जान-बूझकर किये गये अपराधके दण्डमे वहुत अन्तर होता है।

अहसन—दिलकी न कहो बज्ममें 'अहसन' उनसे
वे लड़ाईको हैं तैयार कहा और हुई

दाग़—शामत आ जायेगी 'अहसन' जो कहा कुछ तुमने
....

वज्ममे जहाँ दोस्त दुश्मन सभी तरहके लोग उपस्थित हों, वहाँ माशूकसे मनोभिलाषा प्रकट करना मूर्खता ही नही, सरे-वज्म उसे अपमानित और वदनाम करना है और फिर ऐसे माशूकसे जो लड़ाईपर तैयार हो। इसीलिए उस्तादने वज्ममे तो दिलकी वात कहनेसे रोका

ही साथ ही 'शामत आ जायेगी' कहकर अकेलेमे भी दिलकी बात कहनेसे सावधान कर दिया।

अहसन—'ड्योढीकी ख़ैर' कहके लगायी जो इक सदा
घरसे निकल ही आये समझके गदा[1] मुझे

दाग़—इस दरकी ख़ैर ....
....

ड्योढीके बजाय 'इस दर'के परिवर्तनसे शेर बा-मुहावरा बन गया।

अहसन—रक्खा ही क्या है हज़रते-दिल ! बाग़े-इश्क़में
आकर बटौल लीजिए रंजो-मिहनके फूल

दाग़—.......................................
[2]हसरतके इसमें फल हैं तो रंजो-मिहनके[3] फूल

अहसनके दूसरे मिसरेमे 'बटोल' शब्द कानोको खटकता था ! सम्भव है 'बटोर'के बजाय कातिबकी असावधानीसे बटौल बन गया हो। दूसरा दोष यह था कि बागे-इश्कसे सिर्फ रंजो-मिहनके फूल बटोरनेके वास्ते इशारा है। बागमे फल और फूल दोनो ही होते हे। उस्तादने इसी ऐबको दूर किया हैं।

अहसन—गुलदस्ता है जो आपकी आँखोंके सामने
शामिल इसीमें है दिले-नाशाद बनके फूल

दाग़—.......................................
..................दिले-मजरूह[4]..................

---

१. भिक्षुक, मँगता, २. अभिलाषाके, ३. कष्ट और मुसीबतोंके ४. घायल दिल।

दिले-नाशाद-बन (कुम्हलाये हुए दिलरूपी बन)के फूल लगाये जाने-पर गुलदस्तेके अन्य फूल भी बे-रौनक मालूम देगे और ऐसे मुर्झाये हुए गुलदस्तेको माशूक अपने सामने क्यो रहने देगा ? इसीलिए उस्तादने 'नाशाद'के बजाय दिले-मजरूह रखा। ताकि घायल दिलकी लालीसे गुलदस्तेकी रौनक अधिक बढे।

हिज्र[1]—ऐ हुस्ने-यार ! तेरी ज़रा भी ख़ता नहीं
मै हुस्ने-इत्तिफाक़से[2] दीवाना हो गया
दाग़—हाँ-हाँ तुम्हारे हुस्नकी कोई ख़ता नहीं
....

उस्तादने तनिकसे परिवर्त्तनसे शेरको जमीसे आस्मानपर बिठा दिया। भाषा लालित्यके अतिरिक्त शेरमे बाँकपन और तेवर आ गये। हिज्रके पहले मिसरेसे ज़ाहिर होता था कि वह माशूकसे अपने दीवाना होनेका गिला कर रहे है। लेकिन उस्तादके 'हाँ-हाँ'से जाहिर होता है कि माशूक और आशिक दोनो हमकलाम है और माशूककी यह सफाई देनेपर कि आपके दीवाना होनेकी वजह मेरा हुस्न क्यो होता ? आशिक जवाब देता है—

हाँ-हाँ तुम्हारे हुस्नकी कोई ख़ता नहीं

अफसोस है कि हैदराबाद-जैसे मुकाममे जहाँ दागके सैकड़ो शागिर्द हो, दागकी इस्लाहातका जखीरा नही मिलता। हमको ख़ुशकिस्मतीसे बकयाम वेदर गैर मतबूआ (अमुद्रित) इस्लाहाते-दाग सज्जाद साहबसे

---

१. नवाब नाजिम अलीख़ाँ साहब 'हिज्र' शाहजहाँपुरी। २. सयोगसे।

मिली। हम यहाँ सज्जाद. साहबकी गजलपर दागकी इस्लाहके चन्द नमूने पेश कर रहे है :

सज्जाद:[1]—एजाज़े-हुस्नसे तेरी जूँ सुबह शामे-ग़म
होते हैं रोज़ चाक गरीबाँ नये-नये

दाग़—जेबे-बदन वो देखके उसकी क़बाए-चुस्त
....

सज्जाद:—पहले जो राज़दाँ थे, गये उनको आप भूल
अब राज़दाँ हैं आपके जानाँ! नये-नये

दाग़—..
अब राज़दाँ बने हैं मेरी जाँ! नये-नये

सज्जाद:—अगर देखेंगे उसके बाँकपन को
तो मुर्दे चीरकर निकलें कफ़नको

दाग़—अगर उस बुतके देखें बाँकपन को
....

सज्जाद:—हुजूमे-ग़मसे दिल कुम्हला रहा है
चलूँ क्या ख़ाक फिर सैरे-चमन को ?

दाग—..
.... मैं ....

सज्जाद:—देख आते हुए मक़तल की तरफ़ क़ातिल को
फिर गयी आँखमें तलवार ख़ुदा याद आया

दाग़—देखकर क़त्ले-गहे आम में उस क़ातिल को
मेरी आँखोंमें फिरी मौत, ख़ुदा याद आया

---

१. सज्जादा साहब हज़रत गज नशीन बदरी।

सज्जादः—है आज क्या कि जो नामः-ए-अताब आया
यह वेवजह भला मुझपै क्यों अज़ाब आया
दाग़— ....
यह नामः आया कि मुझपर कोई अज़ाब आया
सज्जादः—तअज्जुब आता है क्यों यक-ब-यक फिरे मुझसे
ज़रा कहो तो यह क्या दिल में ऐ जनाब ! आया
दाग़— ... .
यह क्या ख़याल तुझे शोख ! वे-हिजाब ! आया
सज्जादः—हमारे आगे ही 'सज्जादः' है यह सब बातें
मगर न सामने उनके कोई जवाब आया
दाग़—बड़े ज़बान के तर्रार थे वे 'सज्जादः' !
मेरे सवालका उनको न कुछ जवाब आया
सज्जादः—देखें तो आगे इश्क़ यह क्या रंग लायेगा
कम्बख़्त ही गलेका मेरे हार हो गया
दाग़— .... 'गुल खिलायेगा
.... अब .. ..
सज्जाद—प्यारी सूरत ज़रा दिखाना था
दिलको मेरे अजी लुभाना था
दाग़—मुँहसे घूँघट ज़रा उठाना था
मेरे दिलको ज़रा जलाना था
सज्जादः—सर पै क़ुरआन रहे, पहलूमें जुन्नार रहे
ज़ाहिदा ! देख ले मैं तो हूँ मुसलमाँ ऐसा
दाग़—.............. . .. .
....मुझे मै हूँ... ....

सज्जादः—मिसाले-वहशिए-नादाँ परीशाँ हाल फिरते हैं
कभी अन्दर को आते हैं, कभी बाहर को जाते हैं

दाग़— ·· ···· ·· ······· ······ मजनूँ ········· ······
कभी हम घर में आते हैं ······ ·············

सज्जादः—बातों-बातों में वे दीवाना बना देते हैं
कुछ नयी तर्ज़ से वे जल्वा दिखा देते हैं

दाग़—आँखों-आँखोंमें ······ ························
··········· ··· ··· ················ ········ · · ···

सज्जादः—क़ासिदा ! कहना है जो कुछ वह ज़बानी कहना
ख़त न देना कि वे औरोंको बता देते हैं

दाग़—··········· ·· ··· ······ ·· ·· ···· ··· ······· ·· ·······
··········· ··· ················ ····ग़ैरों को सुना ······

सज्जादः—ख़ैर इतना तो है ऐ दिल ! कि तसल्लीके लिए
आते-जाते रुख़े-रौशन तो दिखा देते है

दाग़—···· ······ ··· · ···· ····· ······ ········ ·
·············· ············ · ···· वे ······· ··

सज्जादः—शिकिस्तः दिल दिखायेंगे उन्हें यूँ
यह टूटा किस तरह बर्त्तन तो देखो

दाग़—मेरा दिल तोड़कर कहते हैं उल्टा
······· ·· ···· ··· · ···· ······ · ··· ··[1]

---

१. सख़ावत मिर्ज़ा बी. ए. एल-एल. बी-द्वारा संकलित निगार, जनवरी, फ़रवरी १९५३, पृ० ११५–११८।

अब चन्द अन्य शिष्योंके अशआरपर मिर्जा दागकी इस्लाह मुलाहिजा फर्माइए—

अज़ीज[1]—क्या जाने आप तेग़की लज्ज़त जनावे-खिज्र !
नाज़ाँ हैं वे तो अपने ही आवे-हयात पर
दाग़—... ... ...
मरते हैं वे तो चश्मए-आवे-हयात पर

वासफ़ी[2]—किया न ग़ैरसे ऐ बेवफा ! हीलः
हमारे पास ही आने तुझे बहाना हुआ
दाग़—... ... ...
... ... आते ... ...

अमीर[3]—कभी कुछ है, कभी कुछ और है हालत तेरी
हम तो आसान समझते थे मुहब्बत तेरी
दाग़—... ... ... तबीयत तेरी
... ...

अमीर—ग़ैरको जामे-शराब और हमें कुछ भी नहीं
याद रह जायगी साकी ! यह इनायत तेरी
दाग़—... ... ... साफ जवाब
... ...

अमीर—बन-ठनके जो कल आप गये राहे-गुजरसे
देखा किया ता देर मैं हसरतकी नजरसे
दाग़—बन-ठनके वे निकले हैं अभी राहे-गुज़रसे
अल्लाह बचाये उन्हें दुश्मनकी नज़रसे

---

१. अज़ीज यार जगबहादुर हैदराबादी। २. अब्दुल समद वासफी हैदराबादी।
३. नवाब मीर हसन अलीख़ाँ अमीर हैदराबादी।

अमीर—उसने हाले-दिल सुना कब ग़ौरसे
कान आख़िर मुद्दई भर ही गया
दाग़—.......................... तग़ाफ़ुलसे सुना
....

अमीर—शगुफ़्तः होगी न गुलशनमें ख़ातिरे-बुलबुल
फिरेगा बाग़में लेकर कहाँ-कहाँ सैयाद !
दाग़—हुई शगुफ़्तः कहीं भी न......... ....
क़फ़सको लेके फिरा है,... . ...

अफ़सूँ[1]—मैं ख़ामोश बैठा हूँ उस बुतके आगे
अजब तरह मतलब अदा हो रहा है
दाग़—.... ....
निगाहोंमें ... ...

हैरत[2]—इक़रारे-वस्ल साफ न, इन्कारे-वस्ल साफ़
तुम तो कुछ ऐसे चुप हो कि मुँहमें ज़बाँ नहीं
दाग़—.. ....
....गोया ज़बाँ नहीं[3]

●

१. मुहम्मद अकबर अलीख़ाँ 'अफ़सूँ'। २. सैय्यद मक़सूद हसन हैरत।
३. यास्मीन अलीख़ाँ-द्वारा संकलित-निगार जनवरी १९५३, पृ० ११८-१९।

शाद अजीमाबादी-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८४६; मृत्यु १९२७ ई०]

खानबहादुर नवाब सैयद अलीमुहम्मद 'शाद' अजीमाबादी ख्वाजा मीर दर्दकी शिष्यपरम्परामें हुए हैं। आपने अपना समस्त जीवन उर्दू-साहित्यकी सेवामे व्यतीत किया। आप गज़लके उच्चकोटिके शाइर थे। आपकी गज़लो, मर्सियोके संकलनोके अतिरिक्त और भी कई रचनाएँ मुद्रित हो चुकी है।

दिल[1]—दूर जब आईनए-दिलसे हुआ ज़ंगे-दुई
हुस्न रूए-यार साफ इसमें नुमायाँ हो गया

शाद— .. ..
रूए-जानाँ साफ़-साफ इसमें नुमायाँ हो गया

दिलके शेरका आशय है कि जब हृदय-दर्पण (आईनए-दिल)से तू-मैं परका भेद-भावरूपी मैल (ज़गे-दुई) दूर हो गया तो उस दर्पण-मे अपने प्यारेका प्रतिबिम्ब (रूए-यार) स्वच्छ झलकने लगा (साफ-नुमायाँ हो गया) उस्तादने यारके बजाय जानाँ और 'साफ'को साफ-साफ बनाकर शेरके भावको बहुत स्पष्ट कर दिया है।

दिल—अब रहे आखिर कहाँ उम्मीदे-वस्ल उस शोख़की
खानए-दिलमें तो दख़्ले-यासो-हिरमाँ हो गया

शाद—अब रहे आख़िर कहाँ जाकर उम्मीदे-वस्ले-यार
....

---

१. वली उलरहमान 'दिल' अज़ीमाबादी।

इस्लाहसे शेरमे प्रवाह और सौन्दर्य्य आ गया।

दिल—चल बसीं अपनी उम्मीदें जो शबे-फ़ुर्क़तमें[1] हाय
कोई मेरा न बजुज़[2] यासके[3] पुरसाँ[4] निकला
शाद— वक़्ते-आख़िर न उम्मीदें, न तमन्नाएँ थीं
....

ऊले मिसरेमे तनिक-सा परिवर्त्तन करके उसे सँवार भी दिया और 'वक्ते-आखिर' बनाकर शेरको एक नवीन रूपमे ढाल दिया।

दिल—उस बज़्ममें मजाल नहीं गुफ़्तगू करूँ
मुद्दतसे दिलमें हौसला है एक आहका
शाद—उस बज़्ममें ज़बान हिलाऊँ मैं किस तरह ?
आना जहाँ मुहाल[5] है होंटों तक आहका
दिल—बिस्मिलको अपने क्यों न नज़र भरके देखिए
आलूद:-ख़ूँ से होगा न दामन गुनाहका
शाद—लिल्लाह बिस्मिलोंको नज़र भरके देख लो
....

दिल—हासिल इक रोज़ वही तेरी लक़ा[6] करता है
राहमें तेरी जो अपनेको फ़ना करता है
शाद—हासिल आख़िरको वही.....................
जो तेरी राहमें हस्तीको फ़ना[7] करता है
दिल—यह भी है नाज़ नया, ज़ुल्म नया, छेड़ नयी
मेरे होते वे रकीबों[8] पै जफ़ा[9] करते हैं
शाद— ....
मुझको दिखलाके.............................

१. विरहरात्रिके समय, २. सिवाय, ३. निराशाके, ४. पूछनेवाला, हमदर्द, ५. कठिन, ६. सहवास, वस्ल, ७. मिटाता है ८. प्रतिद्वन्दियोंपर ९. ज़ुल्म।

दिल—हाय क्यों कर कहूँ बेताबिए-दिलका अहवाल
कब इधर गोशे-तवज्जः[1] वोह भला करते हैं

शाद—किसको दिखलाऊँ मैं बेताबिए-दिलकी हालत
कब इधर चश्मे-तवज्जः........ ... .

दिल—पहुँच ऐ खाक अपनी उनके दामन तक किसी सूरत
समन्दे-नाज़[2]पर वे मेरी तुर्बत[3]से गुज़रते हैं

शाद— . ... उनके दामने-ज़ीं तक किसी सूरत
....

दिल—कमर[4] उनके मुकाबिल हो कभी है यह भला मुमकिन
हुई रूपोश फौरन चाँदनी जब वे निखरते हैं

शाद—क़मर उनके मुकाबिल हो सके कब है भला मुमकिन
छुपा लेती है मुँहको...................... . ...

•

१. कानोंसे सुनना। २. नजाकतरूपी घोडेपर। ३. क़ब्रसे। ४ चन्द्रमा।

जलील मानिकपुरी-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८६४; मृत्यु १९४६ ई०]

जलील हसन 'जलील' मानिकपुरी अमीर मीनाईके पट्ट शिष्य थे। १९०५ ई० मे मिर्जा दागकी मृत्युके बाद हैदराबाद दकनके तत्कालीन नवाब महमूद अलीखाँने आपको मसनदे-उस्तादीपर प्रतिष्ठित किया और जलीलुलकद्र ख़िताबसे विभूषित किया। फिर वर्त्तमान नवाबने जब शासनकी बागडोर सँभाली तो उन्होने भी उस्तादीका गौरव आपको ही प्रदान किया। आपके जीवन कालमे आपसे ही मशवरए-सुख़न लेते रहे। नवाब साहबके अतिरिक्त युवराज और शहजादे भी आपही से इस्लाह लेते थे। पहले आपको नवाब फसाहत जंगबहादुर ख़िताब अता किया गया। दुबारा इमामुलमुल्ककी पदवीसे विभूषित किया गया। आपने गजलोके तीन दीवान स्मृति-स्वरूप छोड़े है। बीसो महत्त्वपूर्ण पुस्तकोके आप रचयिता थे। अमीर मीनाईकी मृत्युके बाद उनके बहुत-से शिष्य आप ही से मशवरए-सुख़न लेते थे।

सफ़दर[1]—जिधर उन शोख़ आँखोंसे
निगाहे-फ़ित्न : जा निकले
क़यामत तक न उस रस्तेसे
ऐ क़ातिल ! क़ज़ा निकले

जलील—..
क़यामत तक उधरसे फिर न
ऐ क़ातिल ! क़ज़ा निकले

---

१. सफदर मिर्जापुरी।

'सफदर' साहबने अपने कलामपर दी गयी इस्लाहोकी खूबियाँ खुद इस तरह बयान की है—

चूँकि पहले मिसरेमे 'जिधर' का लफ्ज था, इसलिए उसके मुकाबिलमे 'उधर' का लफ्ज़ निहायत ही बर महल रखा गया। सन्अते तकाबुलके अलावा (तुलनात्मक दृष्टिकोणके अतिरिक्त) अब दोनो मिसरे बराबरके हो गये और मतला बुलन्द कर दिया गया।

सफ़दर—बहुत चाहा छुपाये चोट उल्फ़तकी, मगर हमदम !
जिगरके चन्द टुकड़े आँसुओंमे मिलके आ निकले

जलील—छुपाई चोट उल्फ़तकी बहुत, पर क्या करें इसको
....

सफ़दर—ऐ सुब्हान अल्लाह क्या इस्लाह दी है "क्या करे इसको" यह टुकडा किस कद्र मुअस्सिर (प्रभावक) है। जिसने शेरको दर्द अगेज (व्यथापूर्ण) बा-असर बना दिया।

चुटकियाँ लेनेकी अब करते हैं मश्क
शोखियोंमें जान डाली जायगी

जलील—.................. ....वोह ....
.. ..

सफ़दर—पहले मिसरेमे 'अब' का लफ्ज बिला जरूरत था। और यह भी पता न चलता था कि कौन चुटकियाँ लेनेकी मश्क करता है ? एक लफ्ज़ 'वोह' से शेरमे रवानी और फ़साहत (प्रभाव एवं लालित्य) ही नही पैदा हुई, बल्कि दोनो नुक्स रफ़ा (दोष दूर) हो गये।

यह नाज़ुकी है कि तलवार तक नहीं उठती
हलाल तुमने किया और मै हलाल हुआ ?

जलील—........... ....खिंचती
....

सफ़दर—उस्तादने बजाए 'उठती' के खिचती बनाया। तलवारके लिए खिचना ही ज्यादा मुनासिब है। इस इस्लाहसे जो लुत्फ़ आया है, वह बयानमे नही आ सकता।

जो मैंने चूम लिया मुँह बहुत ही शर्माये
ख़ता मिरी थी तुम्हें मुफ़्त इन्फ़िआल[1] हुआ

जलील—..
.......................उन्हें.......................

सफ़दर—दूसरे मिसरेमे बजाये 'तुम्हे' के 'उन्हे' बनाया। चूँकि ऊले मिसरेमे माशूक़से खिताब (सम्बोधन) नही, बल्कि एक वाक़ये (घटना) का बयान था। जैसा कि आमतौरपर किया जाता है। इसलिए उस्तादने 'उन्हें' बनाकर शेरमे एक हुस्न पैदा कर दिया।

अदा पर्देकी यह भी कोई ओ सफ़्फ़ाक[2]! थी शायद
भला क्यों नाविके-मिज़गाँ[3] जिगरके पार हो जाता!

जलील—मिरे सफ़्फ़ाक! यह भी इक अदाए-पर्दादारी है
....

सफ़दर—पहले मिसरेकी तरमीम (परिवर्त्तन)से अन्दाजे-बयान, बन्दिश (गठन), सफाई, मिसरेकी चुस्ती मुलाहिजा फर्माइए। मज़मून वही है, मगर लफ्जोके उलट-फेरने एक खास लुत्फ पैदा कर दिया। इस्लाह इसीको कहते है।

अदा समझके वे दामनसे मुँह छुपाते हैं
हिजाब[4] है जो यही तो हिजाब क्या होगा?

जलील—..................वे आँचलसे..................
....

---

१. लज्जित होना, संकोच। २. जालिम। ३. पलकोंके बालरूपी तीर। ४. शर्म, लाज, हयासे मुँह छिपाना।

सफ़दर—पहले मिसरेमे वजाय 'दामन' के आँचल वनाया। अव हकीक़तमे अदा हो गयी। इस इस्लाहमे उस्ताद कामिलने आँचल और दामनमे जो नाजुक फर्क दिखाया वह देखनेकी चीज है। दामनसे मुँह छुपानेमे गो मफहूम अदा (तात्पर्य, भाव स्पष्ट) हो जाता है, मगर आँचलसे मुँह छुपानेमे एक खास अदा पैदा हो गयी। (इस अदाका लुत्फ) उन्ही दिल गिरफ्तियोसे पूछिए, जिनपर कभी ऐसा वक्त गुजर चुका है।

सफ़दर—इधर हमसे ज़रा आँखें मिलाओ
निगाहे-नाज़[1] क्या क़ातिल नही है?

जलोल—इधर देखो, सुए-खंज़र[2] न देखो
... .

सफ़दर—इस इस्लाहका क्या कहना? ऊले मिसरेकी तरमीम (परिवर्त्तन)से शेरमे मआनवी खूबी (अर्थ-सौन्दर्य्य)के अलावा एक वाँकपन पैदा हो गया। 'सुए-खज़र न देखो' यह टुकड़ा उस्तादाना रख दिया। हाय! माशूकसे खिताव और किस लुत्फसे? इस मिसरेकी क्या तारीफ हो सके? अरे तौव। 'इधर देखो सुए खज़र न देखो' हज़रतकी मआनी फ़हमी और वसीह उल नजरी। (भापाविज्ञता और व्यापक दृष्टि) के सुवूतमे वस यही एक इस्लाह काफी है। अहले नज़र ज़रा गौरसे देखे और दाद दे।

सफ़दर—आँखोंसे देखकर कोई महफिलमें रह गया
काँटा-सा इक खटकके मिरे दिलमें रह गया

---

१. हाव-भावकी दृष्टि २. खजरकी तरफ।

जलील—वे देखकर कनखियोंसे......................
....

सफ़दर—कनखियोसे देखना एक ख़ास अदा है, खसूसन-भरी महफिल-में। गो आँखोसे देखना भी गलत न था, मगर कनखियोसे देखना अच्छा ख़ासा काँटा बन गया जो दिले-आशिक़मे खटक-कर रह गया।

सफ़दर—समझनेवाले इसको माजराए-दर्दे-दिल समझे
नज़र आये जो क़तरे ख़ूनके कुछ नोके-[1]मिज़्गाँपर

जलील—समझनेवाले रूदादे दिले-बिस्मिल[2] इसे समझे
....

सफ़दर—इस इस्लाहसे शेरमे चौगुना हुस्न बढ गया। सानी मिसरे 'नजर आये जो क़तरे ख़ूनके कुछ नोके-मिज़गाँपर' की मुना-सबतसे 'रूदादे-दिले-बिस्मिल' ही मुनासिब था। ऐ सुब्हान-अल्लाह क्या इस्लाह दी है।

सफ़दर—कौन कहता है उसे नाज़ो-अदा आती नहीं
मै क़ज़ापर जान देता हूँ, क़ज़ा आती नहीं

जलील—...........................उसे तेरी अदा ....
....

सफ़दर—पहले मिसरेमे बजाये 'नाज'के 'तेरी' बनाया। अस्लमें नाज-का लफ्ज बिला जरूरत था। (क्योकि उसी अर्थका द्योतक 'अदा' शब्द मौजूद था ही) सिर्फ एक लफ्जकी तरमीमसे, मिसरा किस कदर बुलन्द हो गया? इस्लाह इसीका नाम है।

---

१. पलकोंपर, २. घायल प्रेमीके दिलकी कहानी।

सफ़दर—नाल:-ओ-आह पै ज़ालिमको हँसी आती है
बिजलियाँ टूट रही है मेरे ग़म-ख्वारोंपर

जलील—.................................. उनको तो हँसी आती है
....

सफ़दर—पहले मिसरेमे 'जालिम' की बजाय 'उनको तो' बनाया। जिससे लुत्फे-ज़बान बढ़ गया और मिसरेमे रवानी पैदा हो गयी (प्रवाह आ गया) इस 'तो' की क्या तारीफ हो सके? इस मौकेपर बग़ैर 'तो' के मिसरा-सानीका सही मफहूम (आशय) अदा नही हो सकता था। अस्ल शेरके बाद इस्लाह पढकर लुत्फ-अन्दोज (आनन्दित) होइए।

सफ़दर—बारहा[1] लौट गयी आके अजल[2] वालीं[3] से
रहम आया न उसे भी तेरे बीमारोंपर

जलील—बारहा फिर गयी आ-आके ....
....

सफ़दर—अस्ल मिसरेमे 'लौट गयी' ग़ैर फसीह (लालित्यपूर्ण नही) था। इसलिए उस्तादने 'फिर गयी' बनाया। बारहा अजलके आनेका सबूत 'आ-आ' लफ्ज़से पैदा हो गया। इस इस्लाहसे शेरमे तरक्की और रवानी ही नही पैदा हुई, बल्कि बीमारकी नाजुक हालतका पता भी चल गया। बलागत (अलंकारी शैली) इसीको कहते है। अल्लाह-अल्लाह क्या इस्लाह दी है।

---

१. बार-बार, कई दफ़ा, २. मृत्यु, ३. सिराहनेसे।

शरर[1]—ओ दिले-बेताब ! तुझको कुछ ख़बर भी इसकी है ?
आके वे फिर भी गये और तू सँभलता ही रहा

जलील—..
आके वे जा भी चुके..............................

दूसरे मिसरेमे 'फिर भी गये' के बजाय 'जा भी चुके' अधिक लालित्यपूर्ण है और 'आके' की मुनासबतसे 'जा भी चुके' ही उपयुक्त था।

शरर—ग़ममें रहने दो मुब्तला[2] करके
दर्द बढ़ जायगा दवा करके

जलील—..
क्या बना लोगे तुम दवा करके ?

दूसरे मिसरेमे 'दर्द बढ़ जायगा' के स्थानपर 'क्या बना लोगे' बनाकर उस्तादने शेरमे तेवर रख दिये।

शरर—किसको मालूम था मुहब्बतमें
होंगे आज़ुर्दः हम वफ़ा करके

जलील—.....................................
होंगे शर्मिन्दः.......................

वफा करके आजुर्द (खिन्न, दुखित) हुए तो फिर वफा करनेकी भूल ही क्यों की ? 'नेकी कर और कुएमें डाल' सूक्तिके अनुसार तो की हुई नेकियोंको (वफाओको) विस्मरण ही कर देना उचित होता है या फिर शरीफोकी तरह अपनी वफाओंपर नाज करनेके बजाय शर्मसार होना ज्यादा मुनासिब है।

१, मौलवी अब्दुल ग़फ़ूर साहब 'शरर'। २. फँसाकर, ग्रस्त करके।

शरर—उठ गये जब वे मेरे पहलूसे
　　दर्द उठकर शरीके-हाल हुआ
जलील—मेरे पहलूमें जब न वोह बैठे
　　……………………………………

शररके दोनो मिसरोमे 'उठने' 'शब्दके प्रयोगसे पुनरुक्ति दोप आ गया था और जव दूसरे मिसरेमे 'उठना' शब्द प्रयुक्त किया तो लखनवी शाइरीके अनुसार पहले मिसरेमे 'वैठना' शब्द लाजिमी था। अत' उस्तादने पहले मिसरेमे उक्त दोनो दोष भी दूर कर दिये। साथ ही माशूकाना वर्तावको भी सही-सही वयान कर दिया। आशिकके पहलूमे माशूक वैठता ही कव है जो उठकर चले जानेकी नौवत आये और यदि वैठनेके वाद वह उठकर चला भी जाये तो उस आशिकके लिए माशूक-का क्षणभर पहलूमे रहना भी वहुत वडा सौभाग्य है। वजाय इसके कि माशूक पहलूमे कभी वैठे ही नही।

शरर—हुस्ने-यूसुफ[1]से कुछ नहीं तशवीह[2]
　　तू ज़मानेमें वे-मिसाल हुआ
जलील—हुस्ने-यूसुफसे तुझको क्या निस्बत[3] ?
　　…………………… ……………

इस्लाहका आशय स्पप्ट है।

---

१. यूसुफ पैगम्बर अपने युगके सर्वश्रेष्ठ रूपवान थे। २. उपमा। ३ तुलना।

आफ़ाक़[1]—किसका-किसका नाम बताऊँ ?
सबको तो है सौदा तेरा
जलील—किस-किसका मैं ....
....

आफाकके पहले मिसरेमे 'किसका-किसका' शब्द गँवारू था। इसलिए उस्तादने 'किस-किसका' बामुहावरा शब्द जड़ दिया और 'मै' शब्दसे शेरमे' ज़ोर पैदा कर दिया।

आफ़ाक़—तौबः-तौबः यह मुमकिन है ?
लब तक आये शिकवा तेरा
जलील—... ....क्या...................
....

पहले मिसरेके 'यह' के स्थानपर उस्नादने सिर्फ 'क्या' बनाकर मिसरेको सचमुच प्रश्नवाचक बना दिया। 'यह'मे वोह तेवर कहाँ थे जो 'क्या'से पैदा हुए है।

आफ़ाक़—किसीको क़यामतका तड़पा रहा है
वो सुबह शबे-वस्ल जाना किसीका
जलील—क़यामत मेरी जानपर ढा रहा है
....

आफाकके पहले मिसरेमे 'कयामतका' शब्द कानोको खटकता था और तात्पर्य भी स्पष्ट नही होता था। उस्तादने पहला मिसरा 'कयामत मेरी जानपर ढा रहा है' बनाकर सचमुच कयामत बरपा कर दी।

---

१. मुंशी गुलाम हुसैन 'आफ़ाक' बनारसी।

आफ़ाक़—हाय वह प्यारकी बात, उनकी वो भोली सूरत
भूलती ही नहीं 'आफाक' भुलायें क्योंकर
जलील—.....................आँख........
..........यह नहीं.................

भोली सूरत प्यारकी वाते करना क्या जाने ? उसकी तो आँखोसे प्यार छलकना ही भुलाये नही भूलता। दूसरे मिसरेमे 'ही' शब्द व्यर्थ-सा था। उसके वजाय 'यह' वनाकर उस्तादने यह भाव भर दिया कि उनकी प्यारकी आँख और भोली सूरत 'यह' दोनो अदाएँ भुलाये नही भूलती।

नफ़ीस[1]—उसे ताक़े-हरममें किसने ऐ पीरे-मुग़ाँ ! रख दी ?
अरे जल्दी उठाले मैकी बोतल यह कहाँ रख दी ?
जलील—यह शै ....
....

उस्तादने ऊले मिसरेमे केवल 'यह शै' बनाया है। किन्तु इन तीन अक्षरोके परिवर्त्तनसे शेर बहुत दिलचस्प वन गया। अव शेरका आशय यह हो गया—हाय अल्लाह ! ताके-हरम और शरावकी बोतल ! ऐसा पवित्र एवं पूज्य स्थान और यह शै ! अजी पीरे-मुगाँ साहव जल्दी उठाइए। कही शैख और ज़ाहिदकी नज़र पड गयी तो खैर नही।

नफ़ीस—दिले-आशिक़को जब हद्से ज़ियादा[2] नातवाँ पाया
छुरी ग़मज़ेने[3] रख दी और अबरूने[4] कमाँ रख दी
जलील—..
....फैंकी ....

---

१. मुहम्मद यूसुफ 'नफोस' वँगलौरी। २. कमज़ोर। ३. हाव-भावने, नाज़ोअदाने। ४. भँवोंने।

सानी मिसरेमे दो जगह 'रख दी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अतः उस्तादने एक 'रख दी' निकालकर उसकी जगह 'फैकी' बनाया है। छुरी सीने पै रखी जाती है, परन्तु कत्लसे घृणा होनेपर फेकी जाती है।

नफ़ीस—तेरा एहसान क्यों लूँ नामावर ! मैं ख़ुद पहुँचता हूँ
नतीजा क्या लिफ़ाफ़ेमें अगर अपनी ज़बाँ रख दी

जलील—जो कहनेकी थीं बातें, उनको मैं नामेमें क्या लिखता ?
लिफ़ाफेमें बजाये ख़त्ते-शौक़ अपनी ज़बाँ रख दी

उस्तादने इस्लाह-द्वारा नफीसके आशयको स्पष्ट कर दिया।

नफ़ीस—ख़सो-ख़ाशाक[1]की हस्ती ही क्या ऐ बर्क़े-चश्मके-ज़न[2] !
उठाये चार तिनके और बिनाए-आशियाँ रख दी

जलील—चमनमें घर बनाते देर क्या ऐ बाग़बाँ ! हमको
....

नफीस अपने पहले मिसरेमे बुलबुलको बर्कसे मुख़ातिब करते है। जब कि बुलबुलका दिन-रातका वास्ता सैय्याद और बागबॉसे पडता है। बिजली तो वार्त्तालापका अवसर शायद ही कभी देती हो, वह तो कभी कड़कती है और कभी गिरती है।

नफ़ीस—क़हर है ज़ालिमकी आँखोंमें लगावट ही नहीं
दम-ब-ख़ुद ख़ामोश रह जाता हूँ सूरत देखकर

जलील—.... ....
दम-ब-ख़ुद रह जाते हैं सब उसकी सूरत देखकर

इस्लाहका आशय स्पष्ट है

●

१, घास-तिनको को। २, आँखों से संकेत करनेवाली बिजली।

रियाज़ ख़ैराबादी-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८५३ मृत्यु; १९३४ ई०]

सैय्यद रियाज अहमद 'रियाज' ख़ैराबादी मुन्शी अमीर मीनाईके प्रमुख शिष्य थे। शाइरीमे आपने काफी नाम पाया। अखबारोका सपादन भी करते रहे। आपने कभी मदिराको छुआ तक नही, किन्तु मदिरासम्बन्धी कलाम कहनेमे बहुत नाम पाया। रियाजे-रिजवाँ शीर्षकसे आपका दीवान मुद्रित हो चुका है।

वाक़िफ़[1]—मज़ा हो आयें वे कुछ दिन चढ़ाके महशरमें
कुछ अहले-हश्रको भी लुत्फे-इन्तज़ार आये

रियाज़—.............. 'आयें ज़रा दिन'.................. .
....

वाक़िफ़—खिरामे-नाज़से पूछो किधर वे जायेंगे?
चमनमें आये कि दिलमे कहाँ बहार आये?[2]

रियाज़—खिरामे-नाज़ा! बतादे.................... ....
....

अनवर[3]—मानिन्दे-बर्क़ आप नज़रसे गुज़र गये
यह भी नज़र न आया किधरसे गुज़र गये

रियाज़—मिस्ले-शरारे बर्क़ नज़रसे गुज़र गये
यह भी न कोई देख सका वे किधर गये

---

१. मुन्शी सुल्तान अहमद साहब 'वाक़िफ़' बिसवानी। २ हाजी मुहम्मद अनवर ख़ाँ साहब 'अनवर' लखनवी।

अनवर—नरगिस भी रो रही है खड़ी इन्तज़ारमें
दिखलाके आँख उसको भी बीमार कर गये

रियाज़—नरगिसको भी तो रोग लगा इन्तज़ारका
....

मीर 'वहीद' इलाहाबादी-द्वारा इस्लाहें

आपके सम्बन्धमें विशेष परिचय प्राप्त न हो सका। आपके शाइराना मर्त्तबेका इसीसे अन्दाजा किया जा सकता है कि आप अकबर इलाहाबादी जैसे ख्यातिप्राप्त शाइरके उस्ताद थे

अकबर[1]—आज आराइशे-गेसूए-दुता[2] होती है
लो मिरी जान गिरफ़्तारे-बला होती है

वहीद—.... . ...
फिर ....

उस्तादने 'लो'के बजाय फिर बनाकर यह प्रकट किया कि पहले भी आशिक़ गिरफ्तारे-बला होता रहा है। आज फिर गिरफ्तार होनेकी सम्भावना है। 'लो' शब्द व्यर्थ था।

अकबर—हाँ किसी कामका बाक़ी नही रहता इंसान
सच तो ये है कि मुहब्बत भी बला होती है

वहीद—फिर ....
....

उस्तादने ज़रा-सी तरमीमसे शेरको निखार दिया है।

अकबर—हूँ फरेबे-निगहे-नाज़का क़ाइल 'अकबर'
मरते दम तक न खुला यह कि जफा होती है

वहीद—................................ ....
मरते-मरते न खुला....... . ...

---

१. ख़ान बहादुर अकबर इलाहाबादी। २. कमरपर बल खाते हुए बाल सवारे जा रहे है।

अकबर खुद फ़र्माते थे कि "मैंने अपने खयालमे 'मरते दम तक' यह टुकड़ा बहुत समझके रखा था। मगर उस्तादने बजाय उसके 'मरते-मरते' जो बनाया तो वेसाख्ता जी चाहा कि दस्ते-मुबारकको बोसा दूँ। वाकई अजीब नादर (अनोखी बहुमूल्य) इस्लाह दी, जिसकी जितनी तारीफ़ की जाय कम है।"

●

नूह नारवी-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८८६; मृत्यु १९६२ ई०]

मुहम्मद नूह साहव मिर्जा दागके ख्यातिप्राप्त शिष्योमें-से थे। उन्हीके रंगमें जीवन पर्यन्त शेर फर्माते रहे। वही टकसाली चुस्त और मुहावरेदार भाषा, वही रंगीनी और शोखी, वही वातमे वात पैदा करनेका हुनर, वही परम्परागत भाव जो दाग-स्कूलकी विशेपता है, आपके कलाममे पायी जाती है। आपके ४०० के लगभग शिष्य है। तीन दीवान स्मृतिस्वरूप छोडे है। आप नारा जिला इलाहावादके निवासी थे।

बिस्मिल[1]—अज़ीज़-ओ-अक्रिवा[2] क्या कर रहे हैं देखो मरनेपर
कि अपने हाथसे करते हैं पेवन्दे-ज़र्मी[3] हमको
नूह—अज़ीज़-ओ-अक्रिबाको बाद मर जानेके क्या सूझी ?
....

ऊले मिसरेमे तनिक-सा परिवर्त्तन कर देनेसे शेरमे जान पड गयी।

बिस्मिल—नज़अ़में[4] यह कौन आहे-सर्द भरकर रह गया ?
दिल, जिगर थामे हुए जो वो सितमगर रह गया
नूह—............................ ....
थामकर अपना कलेजा वो सितमगर रह गया

---

१. श्री सुखदेवप्रसाद 'बिस्मिल' इलाहावादी। २. अपने इष्ट-मित्रों एवं कुटुम्बियोंको। ३. जमीनमें गाड़ते है। ४. मृत्यु-समयमें।

सानी मिसरेमें 'दिल' और 'जिगर' दोनोंका थामना कुछ उपयुक्त-सा मालूम नही होता था और 'जो' शब्द भी व्यर्थ था। अतः इस्लाह-से दोनों दोष जाते रहे।

बिस्मिल—मुझे मशहूर करती है, तुझे बदनाम करती है
जफा किसकी ? जफा तेरी, वफा किसकी ? वफा मेरी

नूह—मुझे नाकाम रखती है ....
....

ऊले मिसरेमें बदनामके मुकाबिलेमें खारिजी शाइरीके अनुसार 'मशहूर' शब्द लाज़िमी था, किन्तु नूहनारवी दाखिली (देहल्वी) शाइरी-स्कूलके शाइर है। अत. मुनासबतकी परवाह न करके 'नाकाम रखती है' बना दिया। इससे शेर और निखर गया।

बिस्मिल—इधर मैं डूबने जाता हूँ दरियाए-मुहब्बतमें
उधर दुनिया बुलाती है मुझे घबराके साहिलसे

नूह—..... .... आया........ .. . .
. ...

जाता है के बजाय 'आया' बना देनेसे गौरसे देखिए, क्या खूबी आ गयी।

बिस्मिल—अल्लाह-अल्लाह दूर कब दिलसे हुआ उनके गुबार
खाकमें जब मिल गये खाके मिरी तस्वीरके

नूह—होते-होते दूर कब दिलसे हुआ तेरे गुबार
....

उस्तादके तनिक-से परिवर्त्तनसे शेर लालित्यपूर्ण बन गया। ऊले मिसरेमें अल्लाह-अल्लाहकी विशेष उपयोगिता न थी। उसके बजाय 'होते-होते दूर'के परिवर्त्तनसे शेरका भाव स्पष्ट हो गया।

विस्मिल—तीरे-निगाहे-यार ! खुदाकी तुझे कसम
दिलमें लहू रहे न, जिगरमें लहू रहे

नूह—............................ अदाकी ....
....

जव तीरे-निगाहे-यारका मामला था, तव यार (माशूक)को खुदाकी कसम दिलवानेसे क्या फायदा ? जो यार निगाहोंके तीर फेंक रहा हो, उसपर खुदाकी कसमका असर क्या पड़ेगा। उसे तो अपनी उस अदाकी कसम दिलाना ही लाज़िमी है, जिस अदापर उसको नाज़ है। ताकि वोह और भी नाज़ो-अन्दाज़से तीरे-निगाह फेंक सके।

विस्मिल—जव वगोला दश्तमें उठकर कहीं ऊँचा हुआ
क़ैस यह समझा कि बस लैली इसी महफ़िलमें है

नूह—.................................ज़रा ....
....

'कही' वेज़रूरत था, उसके वजाय 'ज़रा' वनाकर शेरको लतीफ वना दिया।

विस्मिल—वोह शमअ़ न थी, वोह वज़्म न थी,
वोह रौनक़ अहले बज़्म न थी
इक याद दिलानेकी खातिर
अम्बार पै परवानः था

नूह—.....................वह सुवहको अहले-बज़्म न थे
वस ....

विस्मिलके ऊले मिसरेमे आये हुए शब्दों—शमअ़, बज़्म, अहले-वज़्म-से रातकी रौनकका पता तो चलता है, परन्तु यह सव रौनक कव न रही, इसका सुवूत नही मिलता। उस्तादने ऊले मिसरेमे केवल

'सुबह' शब्दका इजाफा करके समयका सुबूत पेश कर दिया, और सानी मिसरेमे 'इक'के बजाय 'बस' बना दिया। जिससे शेरका भाव बहुत स्पष्ट हो गया।

बिस्मिल—समझका फेर है, इसको क़ज़ा[1] कहने लगी दुनिया
गिरह[2] जब खुल गयी, तरकीबे-अज्ज़ाए-परीशाँकी[3]

नूह—··· ······ · ···········था······ ···· ·· · · ···· ··········· ·· ···
··· · ·· ···· ··· ·· ··· ········ ··· · · ···· ·· ···· ········

बिस्मिल—कौन रोया लाशपर, किसने जलायी आके शमअ्
हमको इसकी क्या ख़बर, हम मर गये तो क्या हुआ

नूह—··· · ·· ····· · ···· · · ······ ········ ··· ··········· · ····
·· ····· ····· · ·· ·· ····· · · · ··· · ··· जब·· ··· ····

ग़नी[4]—दिलमें अगर मकीं हो, आँखोंसे क्यों निहाँ हो?
अल्लाहरे बदगुमानी, इस दर्जा बद् गुमाँ हो

नूह—······························ ·· ·· ······· ···········
··· ··············· ··· ·· ·····तुम इतने ···· · ······

ग़नी—मिस्ले-कलीम तूर पै हरगिज़ न जायेंगे
देखेंगे हुस्न, यारका जल्वा यहींसे हम

नूह— ············ ·· · ·······जानेसे फ़ायदा?
· · ·· ·· ······ ·············· ·· · ···········

---

१ मृत्यु। २. समस्या, उलझन। ३. पाँच इन्द्रियोंके गठन-प्रणालीका (भेद जब समझ लिया)। ४. मिर्ज़ा उस्मान ग़नी साहब 'ग़नी' इलाहाबादी।

ग़नी—फ़स्ले-गुल आने तो दो, फ़स्ले-बहार आने तो दो
खुद-ब-खुद खुल जायेंगी कड़ियाँ मेरी जंजीरकी
नूह— ... . ख़िज़ाँ जाने तो दो
....

ग़नी—रही है उनकी उल्फ़तमें यह सूरत कूचः गर्दीकी
इधर जाना उधर होकर उधर जाना इधर होकर
नूह—रही है जोशे-वहशतमें ....
... .

ग़नी—हमेशा बेसबब क्यों तुम इसे पामाल[1] करते हो ?
तुम्हें इतनी कुदूरत[2] किस लिए है मेरे मदफ़नसे ?
नूह—हमेशा आते-जाते तुम . ...
....

ग़नी—वादे-सर-सरने[4] कहींका भी न रक्खा मुझको
देखता हूँ तो नशेमन[5] भी गुलिस्ताँमें[6] नहीं
नूह— .. ..किया और मुझे ख़ानाबदोश
. .. .

ग़नी—मेरे पहलूमें रहो, मेरी निगाहोंमें रहो
मैं इसी बातकी रखता हूँ तमन्ना दिलमें
नूह— . . .. फिरो
... . - ....

---

१. नष्ट, बर्बाद। २. शत्रुता, मनोमालिन्य। ३. क़ब्रसे। ४. वायुने। ५. नीड़। ६. बागमें।

मुश्ताक़[1]—वोह हयामें क्या हया, अपने रहें मरहूमे-दीद
वोह भी क्या पर्देमें पर्दा जो सरे-महशर उठे
नूह—वोह भी क्या हसरतमें हसरत निकले जो मरनेके बाद
. . .. ,. . ...

'मुश्ताक'के दोनो मिसरोमे परस्पर कोई सम्बन्ध नही था। उस्तादने इस्लाहसे सम्बन्ध क़ायम कर दिया। जब सानी मिसरेमें 'महशर'का उल्लेख था, तब पहले मिसरेमें 'मरने'का जिक्र लाज़िमी था। क्योंकि महशर (महाप्रलय)मे तो कोई जीवित बचेगा नही।

मुश्ताक़—तूले-महशरकी सुनाता है किसे ऐ वाइज़ !
एक टुकड़ा है वोह मेरी शबे-तन्हाईका
नूह—दिन है महशरका बड़ा यह न सुना ऐ वाइज़ !
. . . .

'तूले-महशरके' के बजाय 'दिन है महशरका बड़ा' बनानेसे शेरमें सफ़ाई आ गयी।

मुश्ताक़—नक़ाब उलटके न आया करो रक़ीबोंमें[2]
यह अंजुमन[3] नहीं श मए-जमालके[4] क़ाबिल
नूह—नक़ाब उलटके रक़ीबोंमें आयें वोह क्योंकर ?
....

मुश्ताक़—उन्हें तो बारे-ख़ातिर[5] हो रहा है सामने रहना
निगाहे-शौक़ करती हैं तक़ाज़ा देखते जाओ
नूह—वे कहते हैं—"हमें हर वक़्त क्यों देखा करे कोई"
....

---

१. अबुल नसीर अहमद साहब 'मुश्ताक़' कुरैशी बॅंगलौरी। २. शत्रुओंमें। ३. महफ़िल। ४. सौन्दर्यरूपी प्रकाशके। ५. तबीयतपर बोझ।

मुश्ताक़—ठहर जाओ ज़रा जी भरके मुझको देख लेने दो
अगर बालींसे[1] जाओ, मेरा मुर्दा देखते जाओ

नूह—ज़रा ठहरो कोई लहज़ेमें अब मैं मरनेवाला हूँ
....

मुश्ताक़—ज़र्रे-ज़र्रे[2] में तेरी शक्लको हम देखते हैं
लोग क्यों जाके तुझे दैरो-हरममें[3] देखते हैं ?

नूह—... ....
लोग जा-जाके अबस[4] दैरो—हरममें देखते हैं

मुश्ताक़—हुए कुछ बेखबर ऐसे, ख़बर इसकी नहीं हमको
मताए-होश[5] मस्तीमें किधर रख दी कहाँ रख दी

नूह—जवानीका ज़माना है, नहीं इसकी खबर हमको
. ...

मुश्ताक़—जफ़ापर की जफ़ा सैयाद ज़ालिमने असीरोंपर
क़फसके सामने ला-लाके शाख़े-आशियाँ रख दी

नूह—निराला ज़ुल्म यह सैय्याद ने ढाया असीरों पर
क़फसके सामने ही लाके शाख़े-आशियाँ रख दी

●

---

१. सिरहानेसे। २. कण-कणमें। ३. मन्दिर-मस्जिदमें। ४. व्यर्थ। ५ होशरूपी दौलत, अक़्लकी दौलत।

नातिक़ गुलावठी

[जन्म १८८६ ई०]

अबुलहसन 'नातिक्' के पूर्वज अहमदशाह अब्दालीके साथ भारत आये थे। आप गुलावठी जिला मेरठके रहनेवाले थे। ११ नवम्बर १८८६ को आपका जन्म हुआ। आप मिर्ज़ा 'दाग' के शिष्य थे। आपके शिष्योमे अब्दुलबारी आसी-जैसे ख्यातिप्राप्त शाइर भी हुए है।

आसी[1]—जाए-इबरत[2] है, रहे-इश्क़[3] की यह मंज़िल सख़्त
और मिरा अव्वले-मंज़िलमें फ़ना[4] हो जाना

नातिक्—अगर्चे अव्वले-मंज़िल भी दुरुस्त है, मगर मजिले-अव्वलकी तरकीब अच्छी मालूम होती है—

....

और मिरा-अव्वले-मंज़िल[5] में फ़ना हो जाना

आसी—हाँ मौसिमे-शबाब है खुल खेलिए ज़रूर
उभरा है जोबन अच्छी तरह नाम उछालिए

नातिक्—जोबन ब-माइनी पिस्तान (कुचोके) उस्ताद 'दाग'के नज़दीक नाजाइज़ है।

आसी—खुद्सर[6] हैं यह कभी न निगह इन पै डालिए
हैं ये सितम शआर[7]-ज़मानेके चालिए[8]

नातिक्—लफ्ज़ 'चालिए' बोलते तो है, मगर किसीके कलाममे देखा नही।

---

१. मौलवी अब्दुलबारी, आसी। २. नसीहत योग्य। ३. प्रेममार्गकी। ४. मिट जाना, मर जाना। ५. मार्गके शुरुआतमें। ६. उद्दण्ड, बे-अदब। ७. ज़ालिम। ८. चालबाज़।

आसी—आते है जब मिरे घर, मेरी तसल्लीके लिए
साथ कोई नहीं होता तो हया होती है

नातिक्—मामूली शेर है, गजलमे मिलता नही निकाल दीजिए।

आसी—न हूँ नाज़ाँ मैं क्यों, मस्ते-क़सीमे-जामे-क़ौसर[1] हूँ
कहीं दुनियामें और ऐसा न दीवाना, न मैखाना

नातिक्—दीवानेको मैख़ानेसे कोई वास्ता नही, शेर निकाल दीजिए।

आसी—परदेस है वोह और यह पुराना लिबास है
जाऊँ आदमको[2] जामए-हस्ती[3] उतार के

नातिक्—मेरे महर्बान काज़ी अब्दुल अजीज साहब 'अजीज़' फ़र्माते हैं—
परदेसमें तो कट गयी कुहन[4]ः लिबाससे

हज़रत 'सफदर' मिर्ज़ापुरी उक्त शेरमे यूँ इस्लाह देते हैं—
उस देशवाले लोगोंके क़ाबिल नहीं यह भेस
जाऊँ अदमको जामए-हस्ती उतारके

आसी—कम्बख़्त दिन बहारके आकर गुज़र गये
इक सालके लिए मुझे दीवानः कर गये

नातिक्— ....
दीवानः था ही और भी दीवानः कर गये

●

---

१. जन्नतमें बहनेवाली शराबकी नहरसे मदिराका जाम पीनेका अधिकारी।
२. परलोकको। ३. जीवन-परिधान। ४. पुराने।

हसरत मोहानी-द्वारा इस्लाहें

[जन्म १८७५; मृत्यु १९५१ ई०]

सैयद फ़ज़लुलहसन 'हसरत' मोहानी वर्त्तमान युगके गज़ल-गो शाइरोमे निहायत बुलन्द मर्त्तबा रखते थे, और गजलके ईमाम समझे जाते थे। १९०३ ई० मे आपने अलीगढ यूनिवर्सिटीसे बी० ए० पास किया। आप कट्टर और धार्मिक मुसलमान थे। समस्त जीवन राजनैतिक और मज़हवी आन्दोलनोंमे व्यतीत कर दिया। कई बार कारागारकी यन्त्रणाएँ भी झेली। आप 'तस्लीम' लखनवीके पट्टशिष्य थे और मोमिन स्कूलके तन्हा यादगार।

शफ़ीक़[1]—सुने जाते थे ऐ साक़ी! जो पहले बाद:ख़्वारोंमें[2]
तरीक़े अब वे राइज[3] हो गये परहेज़गारोंमें

हसरत—............ ऐ ज़ाहिद ....
....

सुरासेवियोके तौर-तरीके (चाल-चलन) संयमी लोगोने अपना लिये, यह बात साकीसे कहनेकी नही, यह व्यंग्य तो जाहिदसे ही किया जाना चाहिए, क्योंकि जाहिद और परहेज़गार एक ही व्यक्तिके नाम हैं। दोनों शब्द समानार्थक है।

---

१. शफ़ीक़ सिद्दीक़ी साहब शफ़ीक़ जौनपुरी। २. सुरासेवियोंमें। ३. प्रचलित।

शफ़ीक़—बहारे-गुल ज़रा उस वक्त देखें देखनेवाले
घटा जब आबपाशी कर चुकी हो सब्ज़ःज़ारोंमें

हसरत— .. ..
घटा जब आबयारी ....

आबपाशी और आबयारी दोनोका अर्थ सिंचाई करना है। आबपाशी करना किसान-माली आदिके लिए प्रयुक्त होता है। चूँकि यहाँ घटाके लिए सिंचाईका उल्लेख हुआ है अत उस्तादने 'आबयारी' बनाकर मिसरेको नाजुक और रंगीन बना दिया।

ख़्वाजा इशरत लखनवी-द्वारा इस्लाहें

ख़्वाजा अब्दुल रउफ़ इशरत लखनवीका परिचय विशेष प्राप्त नहीं हो सका

क़लन्दर[1]—न नाज़ चाहिए क़ारूंकी[2] तरहसे ज़रपर
कि बाद बोझ उठाना पड़े वही सरपर
इशरत—लगा न जानको क़ारूँकी तरह तू ज़रपर
यह बोझ तुझको उठाना है एक दिन सरपर

इस्लाहसे शेर लालित्यपूर्ण एवं जानदार बन गया है।

क़लन्दर—लिखा जो नामेमें[3] अहवाल दर्दे-फ़ुर्क़तका[4]
तो रास्ते ही में बिजली गिरी कबूतर[5] पर
इशरत— · · · बेक़रारिए-दिल
...

दूसरे मिसरेमें बिजली शब्द था। अत. उसकी मुनासबतके लिए 'बेकरारिए-दिल' रखा गया। क्योंकि बिजली भी बेकरार रहती है।

क़लन्दर—हमनशी[6] रफ़्तः-रफ़्तः दूर हुए
हो गयी सारी अंजुमन[7] ख़ाली
इशरत— · · · उठ गये सब
रह गयी आह''

---

१. नवाब महमूदावरख़ान 'क़लन्दर' नवाब करनोल। २. एक बहुत बड़ा धनवान् जो अत्यन्त कृपण था और अन्तमें अपने धनसहित पृथ्वीमें समा गया। ३. पत्रमें। ४. विरह कष्टका हाल। ५. पुराने जमानेमें नामावरका काम कबूतरोंसे भी लिया जाता था। ६. साथी। ७. महफिल।

दूसरे मिसरेमे 'अंजुमन' शब्द आया है। अजुमनमे शरीक होनेवाले उठते हैं, दूर नही होते। दूसरे मिसरेमे 'अंजुमन खाली' के लिए 'आह' शब्दका इज़ाफा भी बहुत खूब है। भरी महफिले खाली हो जाये तो बेसाख्ता 'आह' निकल ही पडती है।

आजिज़[1]—मेरे आज़ारको[2] नहीं समझा
करता तश्खीस[3] है तबीब[4] गलत
इशरत—मेरे आज़ारको न समझा तू
तेरी

पहले मिसरेमे 'समझा' शब्द भूतकाल है, और भूतकालमे 'नही' के बजाय 'न' का प्रयोग होता है। दूसरे मिसरेमे ताकीदे-लफ्जी था। यानी शब्द यथास्थान नही थे। 'तबीब तश्खीस गलत करता है' के बजाय 'करता तश्खीस है तबीब' गलत था। यानी 'करता' शब्द कहीका कही रख दिया था। उस्तादने 'तेरी' शब्दसे इस दोषको भी दूर कर दिया।

आजिज़—दुनिया जिसे कहते हैं वो है ख्वाबका आलम
दो रोज़में हो जाता है गुमनाम मकीं का
इशरत—....... ....
अठवारेमें ....

यद्यपि मुहावरा 'दो रोज़' का है 'दो रोजा ज़िन्दगीपर गरूर न कर' दो रोज़ा शानो-शौकत है आदि। लेकिन उस्तादने 'दो रोज' के बजाय 'अठवारे' का प्रयोग करके शेरमे वास्तविकता समो दी। क्योकि जो भी होता है वह सात वारोके अन्दर ही होता है। सप्ताहको लोग अठवारा भी बोलते हैं।

---

१. पीर शेर मुहम्मद साहब 'आजिज़' फिरोजाबादी। २. रोगको। ३. निदान। ४. हकीम।

आजिज़—ग़ैर हालत रातसे है आशिक़े-दिलगीरकी
इन्तहा अब हो चुकी है, गर्दिशे-तक़्दीरकी
इशरत—...
मुँह छुपाया तुमने यह भी बात है तक़्दीरकी

तक्दीरकी गर्दिशकी वजहसे आशिके-दिलगीरकी गैर हालत हो गयी। यह तो कोई आश्चर्यकी बात नही। ऐसा तो सदैव होता आया है। खेद और मलाल तो इस बातका है कि ऐसे दुर्दिनोंमे उसके माशूकने भी समवेदना प्रकट करने या ऐसे आड़े वक्तमे काम आनेके बजाय मुँह छिपाया (दूर-दूर रहा) शेरमे जब आशिक शब्द था, तब माशूक शब्द भी लाजिमी था। इसीलिए उस्तादने 'तुम' शब्दसे वह कमी पूरी कर दी है। इस्लाहने शेरमे जान डाल दी है।

नादिर[1]—फ़ना[2] होने पै भी इसपर फ़ना[3] हैं हज़रते-इन्साँ
जो यह आलम[4] कहीं दारुल-वफ़ा[5] होता तो क्या होता?
इशरत—सबात[6] इसको नहीं उसपर फ़िदा[7] हैं हज़रते इन्साँ
जो यह दारे-फ़ना[8]...

नादिरके पहले मिसरेमें दो जगह 'फना' शब्द था और वह भी कुछ उपयुक्त नही। नादिरके शेरका तात्पर्य था—नाशवान होनेपर भी मनुष्य इसपर मरता है, जान देता है। अगर यह संसार स्थायी होता तो न जाने क्या होता? इस्लाह देनेके बाद अर्थ हुआ—इसको चिर-स्थायित्व नही। फिर भी मनुष्य इसपर आसक्त है, मोहित है, और कहीं यह नाशवान संसार अविनाशी, चिरस्थायी हुआ होता न जाने फिर क्या होता? उस्तादने बेजान शेरमे जान डाल दी है।

---

१. मास्टर जे० आर० पान साहब 'नादिर' हेडमास्टर झाँसी। २. नाशवान। ३. जान देता है। ४. दुनिया, संसार। ५. स्थायी, अविनाशवान। ६ स्थायित्व, अविनाशीपन। ७. क़ुर्बान। ८. नाशवान संसार।

नादिर—ऐ बशर तू शेर है फरदौसका
आपको नाहक सगे-दुनिया किया

इशरत— ....
गो हविसने है सगे-दुनिया किया

बशर सगे-दुनिया क्यो है, इसका दोनो मिसरोमे कोई जवाब न था। उसी कमीकी उस्तादने 'गो हविसने है' बनाकर पूर्ति की है। नादिरने 'सगे-दुनिया' की मुनासबतसे पहले मिसरेमे 'शेर' शब्दका प्रयोग किया है, किन्तु उन्हे यह ध्यान नही रहा कि फ़रदौस कोई जंगल नही जहाँ शेर रहते हो। वहाँ तो मौलवी, ज़ाहिद, नासेह, शैख़ और दीनदार लोग होगे। शेरोसे फरदौसको क्या वास्ता? उस्तादका भी सम्भवत इस तरफ ध्यान नही गया। इसी भावका द्योतक मानूस सहसरामीका एक शेर मुलाहिजा फर्मायें—

वो ज़िन्दगी कि जिसपै फरिश्तोंको नाज़ था
आलूदए—गुनाह किये जा रहा हूँ मै

नादिर—बैठे हो मिरी बालीं पै तो बैठे रहो हर दम!
उठ गये तुम जो पहलूसे क़यामत उठ खड़ी होगी

इशरत—.... .. .. 'तो दिल भी है क़ाबूमें
....

नादिरके पहले मिसरेमे एक दोष तो यह था कि 'बैठे' शब्दका दो बार प्रयोग हुआ था। दूसरा यह कि बैठनेके लिए माशूकसे प्रार्थना नही 'बैठे रहो हर दम' हुक्म है। जो कि माशूकके मर्त्तबेके लिए सरासर बे-अदबी है। उस्तादने उक्त दोनो दोषोको दूर भी कर दिया और बैठनेके लिए याचना करनेसे भी बेहतर 'तो दिल भी है काबूमे' बनाकर आशिककी वास्तविक स्थिति भी बयान कर दी और माशूकको बैठे रहनेके वास्ते एक युक्तिपूर्ण तरकीब भी निकाल ली।

नादिर—अगर कुछ होश है 'नादिर' तो मर जा इश्क़े-इन्साँ में
यही वह मौत है जो तेरे हक़में ज़िन्दगी होगी
इशरत—अगर कुछ अक़्ल है 'नादिर' तो ख़ाके-राहे-उल्फ़त हो
....

पहले मिसरेमे "इश्के–इन्साँ" मे मरनेका उल्लेख हुआ है जो कि गज़लकी सीमासे परेकी चीज़ है। अलबत्ता यह मिसरा नज्मके लिए उपयुक्त था। लेकिन यहाँ गजलके शेर कहे जा रहे हैं, अत उस्तादने गजलके रूपक[1]—"राहे–उल्फ़त" को मिसरेमे सँजोया है।

•

१. ग़ज़ल और नज़्ममें क्या अन्तर है—ग़ज़लके रूपक क्या हैं, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन 'शेरो-सुख़न' पाँचवें भागमें किया गया है।

वसीम ख़ैराबादी-द्वारा इस्लाहें

आक़ाए-सुख़न हज़रत वसीम ख़ैराबादीका परिचय अधिक नहीं मालूम हो सका।

नफ़ीस[1]—क़दम फ़लक ही पे पड़ता है अहले-उल्फ़तका
दयारे-इश्क़में कोसों ज़मीं नहीं मिलती

वसीम—जलीलुलकद्र (जलील मानिकपुरी) ने 'पै'को तर्क नही फर्माया ('पर'के अर्थमे 'पै'को भी जाइज़ समझा) मैने तर्क कर दिया है। आप अपने उस्तादके पैरो (अनुयायी) रहिए और मिसरा न बदलिए। मै बतौर ख़ुद यह मिसरा लिखता हूँ। मिसरा रखियेगा तो हमारी तरफसे दो स्वाद।[2]
कदम फलक ही पर अहले-तलबके पड़ते है
....

नफीसके पहले मिसरेमे "पै पडता" तनिक कानोमे खटकता था। एक जगह दो 'प'का प्रयोग उचित नही। अत: वसीम साहबकी इस्लाह-से उक्त दोष दूर हो गया।

नफ़ीस—तिरी गलीमें लगे हैं ये ढेर कुश्तोंके[3]
मिरी लहदको[4] भी दो गज़ ज़मीं नहीं मिलती

वसीम— ....
कि मेरी क़ब्रको दो गज़ ज़मीं नहीं मिलती

नफीसके दूसरे मिसरेमे 'भी' शब्द भर्तीका था। उस्तादने उसे निकालनेकी वजहसे यह इस्लाह फर्मायी।

---

१. मुहम्मद यूसुफ़ साहब नफ़ीस बँगलौरी। २. 'नफीस' पहले जलील साहबसे इस्लाहें लिया करते थे। ३. मृतकोंकी लाशोंके। ४. क़ब्रके वास्ते।

नफ़ीस—यह मैंने ख़ाक़ उड़ायी है जोशे-वहशतमें[1]
अब आस्मानके नीचे ज़मीं नहीं मिलती
वसीम—यह वहशियोंने[2] उड़ायी है ख़ाक मिल-जुलकर
....

मिसरेमे 'मिल जुलकर'का इजाफा सोनेमें सुगन्धका काम दे रहा है।

नफ़ीस—जहाँ आँसू गिरा इक चश्मए-ज़मज़म[3] वहाँ उबला
पड़ी बुनियाद काबेकी जहाँ मैंने जबीं[4] रख दी
वसीम— .... गिरे ....
. .. .

यहाँ बहुवचनकी ही आवश्यकता थी।

नफ़ीस—चलेगा मुझ पै क्या जादू ज़मानेकी दुरंगीका
नजरमें मैंने रक्खा है तुम्हारी चश्मे-पुरफ़नको[5]
वसीम—.... .. ..
कि बरसों मैंने देखा है किसीकी चश्मे-पुरफ़नको

चश्मे-पुरफनको नजरमें रखनेके बजाय 'देखना'अधिक स्वाभाविक है।

नफ़ीस—मस्तानःवार आते हैं वे झूमते हुए
मस्ती शराबकी है कि मस्ती शबाबकी
वसीम—मस्तों की तरह ....
....

इस्लाहसे शेरमे तनिक प्रवाह बढ़ गया।

---

१. प्रेमोन्माद में। २. दीवानोंने, प्रेमोन्मत्तोंने। ३ उस कूएँका स्रोत जो मक्केमें है, जिसका पानी बहुत ही पवित्र समझा जाता है। ४ मस्तक। ५ मक्कार आँखोंको।

अंजुम नेशापुरी-द्वारा इस्लाहें

[नवाब बहादुर हुसेन खाँ 'अंजुम'का विशेष परिचय प्राप्त नहीं हो सका।]

अफ़सर[1]—तारोंके टूटनेकी क्या सैर देखते हो?
सद्के[2] उतर रहे हैं तुमपर यह आस्माँसे
अंजुम—तारोंके टूटनेको तुम ग़ौरसे न देखो
....

तारोके टूटनेको सद्केसे उपमा देना अच्छी कल्पना है। अफसरका शेर भी अपनी जगह मौज़ूँ है, परन्तु उस्तादने "तुम ग़ौरसे न देखो"का परिवर्त्तन करके उस्तादाना सूझ-बूझका परिचय दिया है। जब कोई स्नेह-पात्र ऐसे रोगमे या चक्करमे मुब्तिला हो जाता है कि दवाएँ और दुआएँ उसके लिए कारगर नही होती, तब कुछ लोग टोने-टोटके करते हैं, और बतायी हुई कोई वस्तु सरपरसे न्योछावर करके किसी चौराहेपर रख देते हैं या किसीको दे देते है। सद्का उतारी वस्तुको दु खग्रसित व्यक्तिको देखने नही देते है।

अफ़सर—हद्दे-ज़ाहिरीसे बढ गया जब शौक़े-नज़्ज़ारः[3]
तो हर ज़र्रेमें मुझको इक नयी दुनिया नज़र आयी
अंजुम—...........से बढ गयीं जब वुसअ़तें[4] दिलकी
....

---

१. नवाब ल्याक़त हुसैन साहब 'अफ़सर'। २. कोई चीज़ ख़ैरात करनेके वास्ते सरसे वारकर देना, न्योछावर करना। ३. देखनेका शौक़। ४. हृदयकी सामर्थ्य, दिलकी इच्छाएँ।

अफ़सर—कहते-कहते रात गुज़री ख़त्म अफ़साना हुआ
सुबहको वे पूछते हैं इसके आगे क्या हुआ

अंजुम—..
..................................और कहिए क्या हुआ ?

नफ़ीस—क्यों हिज्रमें ख़फ़ा है ऐ क़ल्बे-ज़ार जाँसे
क्या फ़ायदा उलझकर दमभरके मेहमाँसे

अंजुम—..
बेकार उलझ रहा है..................................

●

नातिक़ लखनवी-द्वारा इस्लाहें

सैय्यद अहमद 'नातिक' लखनवी यूनानी हकीम थे और वर्तमान-युगीन लखनवी गजलगो शाइरोमे उच्च मर्त्तबा रखते थे।

मुज़्तर[1]—सबसे छुपते हैं छुपें, मुझसे तो पर्दा न करें
सैरे-गुलशन वे करें शौकसे, तन्हा न करें

नातिक़—[2]महरूमे-राज़े-तजल्ली[3] हूँ अज़लसे मैं तो
सबसे छुपते है छुपें मुझसे तो पर्दा न करे

मुज्तरका पहला मिसरा .खूब था, किन्तु उसका दूसरे मिसरेसे ताल-मेल नही बैठता था। उस्तादने अपनी तरफ़से जो मिसरा प्रदान किया उससे शेर महत्त्वपूर्ण बन गया।

मुज़्तर--ज़रा चिलमन हटाकर सामने आ जाएँ अच्छा है
खड़े है सुवहसे आज उनकी सूरत देखने वाले

नातिक़--ज़रा चिलमन हटादें या बुलालें सामने अपने
....

माशूकासे चिलमन हटाकर सामने आनेकी आशा ही करना व्यर्थ है। किसी बड़े आदमीको आनेके किए कहना ही धृष्टता है और फिर माशूकासे सामने आनेके लिए कहना सरासर बेअदवी है। वह आशिक-को अपने सामने आनेके लिए आदेश दे यही बहुत बड़ा सौभाग्य है। उस्तादने इसी बारीकीको अपनी इस्लाहमे निभाया है।

---

१. हाफिज़ कारी सईद अजमत अली साहब 'मुज़्तर'। २-३ उसके सौदर्यका भेद मै सदैवसे जानता हूँ (तूर पर्वतपर खुदाने जो जल्वा दिखाया था, उसी ओर सकेत है।)

मुज़्तर--हसीनो ! यह न पूछो क्या नतीजा इससे निकलेगा ?
तुम्हारे ज़ुल्मपर करते हैं हैरत देखने वाले
नातिक़—..... ... .क्या ज़माना तुमको कहता है
....

प्राय: सभी अत्याचारी अपने अपराधोके परिणामोसे विज्ञ होते है। अतः शायद ही कोई ज़ालिम अपने कुकृत्योके नतीजोके सम्बन्धमें जिज्ञासा रखता हो, किन्तु प्रत्येक कुकर्मी यह जाननेके लिए उत्सुक रहता है कि लोगबाग मेरे सम्बन्धमे क्या धारणा रखते है ? इसी वास्तविकताको उस्तादने स्पष्ट किया है।

मुज़्तर—आये हैं ताज़ियतको[1] मगर देखते हैं हम
छूते नहीं हैं कुश्तए-रंजो-मिहनके[2] फूल
नातिक़— ....मगर है यह इज्तिनाब[3]
... .

ऊले मिसरेके 'देखते है हम' के बजाय 'है यह इज्तनाब' बनाकर उस्तादने उन व्यक्तियोंका चित्र खीच दिया जो प्रकटमे संवेदना प्रकट करते है, किन्तु दिलमें नफरत रखते है। बहुत ख़ूब इस्लाह दी हैं।

मुज़्तर—न पूछो मुझसे तुम इस बेवफ़ाई पर कि क्या तुम हो
सितमगर, बेमुरव्वत, ख़ुदग़रज़, ना-आश्ना तुम हो
नातिक़—भला मै क्या कहूँ इस ....
....

इस्लाहका आशय स्पष्ट है।

---

१. मर जानेपर शोक प्रकट करनेके वास्ते जाना। २. कष्टों और दुःखोंके कारण मिटनेवालेपर चढ़ाये गये पुष्प। ३. घृणा, नफ़रत।

महवी सिद्दीक़ी लखनवी-द्वारा इस्लाहें

महवी सिद्दकी-द्वारा दी गयी ये -इस्लाहे 'अलम' मुज़फ्फरनगरीकी टिप्पणी सहित जून १९४४ के शाइरमे प्रकाशित हुई थी। वही इस्लाहे हम अपने ढंगपर सरल भाषामे देनेका प्रयास कर रहे है—

अख़गर[1]—यह कौन आया ? सरे-मरक़द अदूको साथमें लेकर
कि फिर चिनगारियाँ उड़ने लगीं ख़ाकिस्तरे-दिलसे

महवी—सरे-मरकद अदूको साथ लेकर कौन आया है ?
....

"साथमे लेकर" गलत उर्दू थी। अत 'मे' को इस्लाहमे निकाल दिया गया। "कौन आया है" अन्तमे ले आनेसे मिसरेमे प्रवाह और चुस्ती आ गयी।

अख़गर—उसीके दिलसे पूछें लज्ज़तें नाकामयाबी की
सफीना जिसका टकराकर रहे पानीमें साहिलसे

महवी—....................पूछो........ .. ..
....................पानीमें रहा टकराके......... ..

पहले मिसरेमे 'पूछें' का उपयोग उचित नही था। इसलिए 'पूछो' वनाया गया। दूसरा मिसरा 'टकराकर रहे पानीमे' उलझा हुआ-सा था, उसे इस्लाह-द्वारा सुलझा दिया गया।

---

१. हकीम वशीर अहमद 'अख़गर' गुलशनावादी।

अख़गर--इलाही ! फिर यह क्या शोरे-क़यामत है सरे-बालीं ?
अभी तो दिलमें तन्हाईने घर पाया था मुश्किलसे

महवी--सरे-बालीं इलाही ! फिर यह क्या शोरे-क़यामत है ?
....

"सरे-बाली" को शुरूमे लानेसे मिसरेमे निखार आ गया।

अख़गर--तकल्लुफ़ बरतरफ हर-एक दीवाना है दीवाना
कि वाक़िफ ही नहीं कोई, यहाँ आदाबे-महफ़िलसे

इस शेरपर उस्तादने इस्लाह नही दी है। शायद छोटी-सी गलती-को नजरन्दाज कर गये, अथवा शिष्यका प्रारम्भमे उत्साह बढानेके लिए उसकी योग्यताको देखते हुए संशोधन उचित नही समझा। हालाँ कि जनाब 'अलम' मुजफ्फरनगरीके मतानुसार पहला मिसरा यूँ बदला जा सकता था--

तकल्लुफ़ बरतरफ हुशयार भी हैं आज दीवाने

अख़गर--बिदाए-गुल पै क्या-क्या अन्दलीबाने चमन रोये
लहू टपका किया हर शाख़ पै चश्मे-अनादिल से

महवी--न पूछो किस तरह रोये बिदाए-गुल पै गुलशनमें
....पर ....

दोनो मिसरोमे--"अन्दलीब" और "अनादिल" शब्द समानार्थक थे। एक ही शेरमे एक शब्द दो बार प्रयोग करना वर्जित है। काफिया अनादिल है। इसलिए पहले मिसरेमें-से 'अन्दलीब' निकालनेके लिए यह संशोधन किया गया। संशोधनसे मिसरा चमक भी गया। दूसरे मिसरेमे 'पै' की जगह 'पर' बनाया गया है। 'पर' मिसरेमे जब फिट हो सकता है तो 'पै' क्यों रखा जाये ?

अख़गर—यह किसकी जल्वारेज़ आँखोंने फिर गरमा दिया दिलको
वफ़ूरे-कैफ़ तो देखो उड़ा जाता हूँ महफ़िलसे
महवी—यह किसकी जल्वाज़ा नज़रोंने........ ....
... .,.... ....

'जल्वारेज'[1] या 'जल्वाजा'[2] के साथ नजरोका रखना-लालित्यपूर्ण है। नजरे और आँखे समानार्थक होते हुए भी अपने भिन्न-भिन्न भाव भी रखती है।

अख़गर—बिदाए-बज़्मे-अंजुम, डूबता दिल, डूबते तारे
तुलूए-सुबह है, रौनक़ उठी जाती है महफ़िलसे
महवी—........... ...शब है.... ....
....

'विदाए-बज्मे-शब' बहुत अच्छी इस्लाह दी गयी है। पहले मिसरेमे 'अंजुम' (नक्षत्र) और तारे समानार्थक दो शब्द थे। अत. 'बज्मे-अंजुम' के स्थानपर बज्मे-शब है रख देनेसे मिसरेका व्याकरणी दोष भी जाता रहा और मिसरेमे सौंदर्य्य भी बढ गया। पहले मिसरेमे 'बज्मे-शब' और दूसरे मिसरेमे 'तुलूए-सुबह' ने शेरमे जान डाल दी।

•

१. रूप-सुधा बखेरना। २. सौन्दर्य-प्रदर्शन करना।

सीमाव अकबराबादी-द्वारा इस्लाहें

'अलम' मुजफ़्फ़रनगरीकी गजलपर 'सीमाव' अकबराबादी-द्वारा दी गयी इस्लाहे जुलाई-अगस्त १९४४ के शाइरमे प्रकाशित हुई थी। उस्ताद-द्वारा दी गयी इस्लाहोपर स्वयं अलम साहबने व्याख्या की है। हम उसी आवारपर सरल भाषामे स्वतन्त्र रूपसे स्पष्टीकरण कर रहे है—

अलम[1]—नज़र बनकर वह दिलपर छा रहा है
तजल्लीका मज़ा अब आ रहा है

उक्त शेर ठीक समझकर उस्तादने इस्लाह नही दी।

अलम—न बढ़ हद्से सिवा ऐ बढ़नेवाले!
ज़माना पीछे जा रहा है

सीमाव—.... .. ..
ज़माना तुझसे खिंचता जा रहा है

दूसरे मिसरेमे जमानेके पीछे हटनेसे कोई उच्चभाव उत्पन्न नही होता था। इसलिए उसकी जगह 'तुझसे खिंचता' बना दिया गया। अब यह माइनी हो गये कि—ऐ बढ़नेवाले! हद्से न बढ़ अर्थात् अपनेको सन्तुलित रखते हुए सीमामे रह, क्योकि जमाना तुझसे नफरत कर रहा है। सीमा उल्लंघन करनेसे मनुष्य मार्गसे भी भटकता है और अवज्ञा भी करता है। औकातसे बाहर जानेमे मनुष्य उपहासका पात्र

---

१. जनाब 'अलम' मुजफ्फ़रनगरी जो कि उस्तादके जीवन-कालमें 'उस्ताद' के मर्त्तबेको पहुँच गये थे और सीमाव साहबके आदेशपर अपने उस्ताद भाइयोंके कलामपर इस्लाह देने लगे थे।

बनता है। अस्लमे 'पीछे' शब्दमे सकता पड़ रहा था, वह दोष भी इस्लाहसे दूर हो गया।

अलम—रखी तुमसे उमीदे-महर्बानी
मुझे अपने पै गुस्सा आ रहा है
सीमाव—उमीदे-महर्बानी और तुमसे ?
....

पहले मिसरेमे 'रखी' शब्द भूतकाल और दूसरे मिसरेमे 'आ रहा है' वर्त्तमानकाल था। ऐसी हालतमे दोनो मिसरोका मेल ठीक नही बैठ पा रहा था। अत पहला मिसरा बदला गया, परन्तु इस खूबीसे कि शेरका आशय ज्यो-का-त्यो रहा और शेरमे प्रवाह और बाँकपन आ गया।

अलम—यहाँ पर्देको जुम्बिश तक नहीं, और
यहाँ दिल है कि बस थर्रा रहा है
सीमाव—.... ... . नहीं है
यहाँ पहलूमें दिल . ...

पहले मिसरेके अन्तमे 'और' शब्द बेमायने और फिजूल था। इसलिए उसकी जगह 'है' बनाया गया जिससे मिसरेमे चुस्ती और एकरूपता आ गयी। दूसरे मिसरेमे 'बस' शब्द भरतीका था। उसके बगैर भी मिसरेका आशय समझमे आता है। इसलिए उसके स्थानपर 'पहलू' शब्द बनाकर मिसरेको दोष-मुक्त कर दिया।

अलम—न पूछो तल्खिए-नाकामी उससे
जो हँसता और रोता जा रहा है
सीमाव—न पूछो उससे नाकामीकी तल्खी
... .

'तल्खिए-नाकामी' फ़ार्सी इजाफ़त यहाँ मुनासिब मालूम नही हो रही थी, और 'नाकामी' की 'ई' भी सकता पैदा कर रही थी। अत. उस्तादने फ़ार्सी इज़ाफ़तकी जगह उर्दू "नाकामीकी तल्खी" बना दिया। अब पूरा मिसरा चुस्त हो गया। पढ़िए—

न पूछो उससे नाकामीकी तल्ख़ी

निम्नलिखित तीन अशआरपर उस्तादने सहीका निशान बनाया है और इस्लाहकी ज़रूरत नही समझी—

अलम—ख़याले-गर्दिशे-ऐय्याम तौबः
अभीतक सर मेरा चकरा रहा है
तआक़्क़ुबमें[1] हज़ारो कारवाँ हैं
कहाँ ऐ जानेवाले जा रहा है ?
गिरा है हाथसे साक़ीके साग़र
नया अब दौर शायद आ रहा है
अलम—जवानी खोनेवालो क़हर है यह
कयामतका ज़माना आ रहा है
सीमाब—...................... ... ...मुज़दाबादा
....

'कहर है यह' इस टुकड़ेने पूरे शेरको बेकार कर रखा था। इसलिए उसकी जगह 'मुजदाबादा'[2] बना दिया गया। अब शेरके मायने बुलन्द हो गये। यानी जवानी खोनेवाले तुमको मालूम हो कि जमानए-कयामत अर्थात् जवानीका ज़माना खत्म हो गया।

अलम—न था अन्दाज़ा क्या इशरतमें इसका ?
मुसीबतसे बहुत घबरा रहा है
सीमाब—.............................. . . ..
....जो तू ....

---

१. पीछा करनेवालोंमें। २. समाचार है।

बात किससे की जा रही है, अस्ल शेरमे कोई संकेत न था। उस्तादने 'बहुत' की जगह 'जो तू' बनाकर इस कमीकी पूर्ति कर दी।

इन दो शेरोपर उस्तादने सहीका चिह्न बनाकर इस्लाहसे मुक्त रखा है।

अलम—वहाँ आग़ाज़ ही में खत्म किस्सा
यहाँ अंजाम सोचा जा रहा है
मुहब्बतकी इन्हींसे ज़िन्दगी है
मज़ा नाकामियोंका आ रहा है

अलम—मिटाये जा रहे हैं सैकड़ों दिल
कोई दिल भी बनाया जा रहा है ?
सीमाब—... ... नक़्श लाखों
हमारा दिल बनाया ... ...

इस शेरकी इस्लाह उर्दू-जबानका एक जबरदस्त कारनामा है। अस्ल शेर बहुत मामूली था। यानी सैकड़ो दिल मिटाये जा रहे है, मगर बनाया एक भी नही जाता। बिलकुल मामूली और आम बात थी। अब इस्लाहका कमाल देखिए कि पहले मिसरेमे 'सैकडो दिल' के बजाय 'नक्श लाखो' बनाया गया है और दूसरे मिसरेमे 'कोई' की जगह 'हमारा' रखा गया है। अब यह मायने हो गये कि हज़ारो नक्श मिटाये जा रहे है और इस तरह हमारा दिल बनाया जा रहा है। सुब्हान अल्लाह कितनी ज़बरदस्त और कामयाब इस्लाह दी गयी है।

अलम—खुशीपर और न इत्मीनान दिल पर
अभी दिल आज़माया जा रहा है
सीमाब—... ... ... ग़मपर
... ...

पहले मिसरेमें 'दिल' शब्द निरर्थक था। खुशीके मुकाबिलेमे 'गम' शब्द रखकर शेर सार्थक बना दिया है।

अलम—मुहब्बतमें वही है कामका दिल
जिसे नाकाम समझा जा रहा है

उस्तादने उक्त शेरपर इस्लाह नही दी है।

अलम—भला कैसे रहे क़ायम नशेमन ?
चमन पर बिजलियाँ बरसा रहा है

सीमाब—कोई इस अब्रे-बे परवाको देखे
.. ..

चमनमें कौन बिजलियाँ बरसा रहा है, शेरमे इसका कोई जिक्र न था। इस्लाहमे 'अब्र' (बादल)का टुकड़ा डालकर इस कमीकी पूर्ति भी कर दी और मिसरेको प्रवाह युक्त और सजीव बना दिया।

अलम—वहाँ तकलीमे-आराइश[1] जरूरी
यहाँ दम है कि निकला जा रहा है

उक्त शेरको इस्लाहसे मुक्त समझा गया।

अलम—नहीं है मुस्करानेका भी मौक़ा
मुझे हँसने पै रोना आ रहा है

सीमाब—मेरे रोने पै दुनिया हँस रही है
....

अस्ल शेरके दोनों मिसरे असम्बन्धित थे। दोनोंका परस्पर कोई मेल न था और शेरका आशय भी साधारण था। इसलिए पहला मिसरा निकालकर ऐसा मिसरा प्रदान किया कि पूरा शेर सार्थक बन गया।

---

१. श्रृंगार करना।

अफ़सर मेरठी

हामिद अल्लाह 'अफसर' १८९८ ई० मे उत्पन्न हुए। मेरठ निवासी है और इण्टर मीडिएट कॉलेज लखनऊमे लेक्चरर है। शाइरीका शौक बचपनसे था मगर प्रकट नही करते थे। सहपाठियोके आग्रहपर १९१६ ई० मे एक मुशाअरेमे सर्वप्रथम गजल पढी, फिर अर्से तक मुशाअरोमे नही गये। मुशाअरोके लिए मिसरा तरहपर गजल कहनेसे घबराते हैं। जो कुछ देखते और अनुभव करते है, उमंग आनेपर उसीको अपनी शाइरीका परिधान पहनानेका प्रयास करते है।

कौसर[1]—कोई गवाह हश्रमें[2] भी साथ चाहिए
क़ाबू चले तो साथ ही लूँ चारःगर[3] को मैं

अफ़सर—शाहिद[4] कोई तो हो गमे-दिलका ब-रोजे-हश्र[5]
बस हो तो साथ लेके चलूँ ....

कौसर—दुनिया के मशग़लोंका[6] लहदमें[7] ख़याल क्या?
याँ आके अब तो भूल गया रहगुज़र[8] को मैं

अफ़सर— . . . .
मंज़िल पै आके ... .

●

---

१. एहसानअली साहब 'क़ौसर'। २. महाप्रलयके दिन। ३. चिकित्सकों। ४. साक्षी, गवाह। ५. प्रलयके दिन जब अपराधकी जाँच होगी। ६. काम काजका ७. क़ब्रमें। ८ मार्गको।

जोश मलीहाबादी-द्वारा इस्लाहें

शाइरे-इन्किलाब शब्बीर हसनखाँ 'जोश' १८९४ ई० में मलीहाबादमे उत्पन्न हुए। आप ९ वर्षकी उम्रमें ही शेर कहने लगे थे। प्रारम्भमे आप 'अजीज' लखनवीसे मशविरए-सुखन लेते थे, किन्तु थोड़े अरसेके बाद स्वतन्त्र रूपसे नज्म कहने लगे। आपकी क्रान्तिकारी नज्मोंकी समस्त भारतमें धूम थी और आपका अनुकरण सैकड़ों शाइरोने किया। नवम्बर १९५५में करांची (पाकिस्तान) चले गये। आपकी नज्मोके १५के करीब संकलन प्रकाशित हो चुके है। कभी-कभी मुशाअ़रोंके सिलसिलेमें पाकिस्तानसे आते रहते है। गद्य और पद्य दोनोंमे आप कमालकी महारत रखते है।

उर्दू के उदीयमान शाइर और अदीब श्री नरेशकुमार शाद लिखते हैं—

"अक्तूबर १९५३ ई० की बात है। मैं अपने कविता-संकलन 'आहटें'पर सम्मति लिखवानेके लिए हजरत जोश साहबकी ख़िदमतमें पहुँचा। उन्होंने अपनी रिवायती वजअ़दारी और मख़सूस मुरव्वतसे काम लेते हुए—"जी हाँ, जी हाँ" कहकर स्वीकृतिमे सर हिलाया और कविता-संकलन मुझसे लेकर अपनी मेजकी दराजमे रख लिया।

मैंने सोचा था कि इस सिलसिलेमे याद दिलानेके लिए कम-ज-कम एक बार फिर जोश साहबके पास जाना पड़ेगा। लेकिन तीसरे दिन ही उन्होने खद मुझे बुला भेजा और मेरे हैरतकी इन्तिहा न रही, जब मेज़की दराज़से संकलन निकालते हुए फ़र्माया—

"तुम्हारा मज्मूआ मैंने शुरूसे आख़िर तक पढ लिया है, बिला शुबह (नि.सन्देह) तुम ख़ूब कहते हो!" इतना कहकर पेन्सिलसे लिखे हुए

पेश-लफ्ज़ (प्राथमिक)को मेरी तरफ़ बढा दिया और इससे पहले कि मैं शुक्रिय अदा करनेके लिए कुछ कहूँ कहने लगे--

"तुम्हारी शाइरीके मुताल्लिक मैने अपनी सही राय तो लिख दी है। लेकिन तुम्हारे चन्द शेरोंमे कही-कही तर्मीम (इस्लाह) भी कर दी है। यह तर्मीम अगर तुम्हे मुनासिब मालूम हो तो अपना लेना।"

जब मैंने जोश साहबकी इस्लाहोपर गौर किया तो महसूस किया कि उनकी हर तर्मीम (संशोधन) की तहमे ज़बान और फन (भाषा एवं कला) की कोई-न-कोई रम्ज पोशीदा (सकेत निहित) है। और क़ाबिले-कद्र बात यह थी कि एक लफ्जकी तर्मीम करते हुए भी उन्होने शेरके नफ्से-मजमून और मेरे बुनियादी मैलान (मजमूनके आशय एवं मूल अभिरुचि) पर जरा-सा हर्फ नही आने दिया था। इस्लाहकी चन्द मिसाले पेश कर रहा हूँ—

शाद—जल्वोंकी कायनातमें थी सारी कायनात
आगे बढा न तंग नज़र अपनी ज़ातसे

जोश— .... जुम्लः ......
....

जोश साहबने दादका निशान लगानेके साथ-साथ पहले मिसरेमे 'सारी' के बजाय जुम्ल (सम्पूर्ण) लिख दिया है। सारीकी 'ई' दब रही थी और इस खराबीको दूर करनेके लिए जोश साहबको यहाँ सारीका हम मायनी लफ्ज जुम्ल रखना पडा।

शाद—बारहा पर्दए-मसर्रतमें
तेरे ग़मने मुझे पुकारा है

जोश— .... से
....

जोश साहबने पहले मिसरेमे सिर्फ एक लफ्ज 'मे' को 'से' में तब्दील कर दिया है। जाहिर है कि इस मकामपर 'मे' खिलाफ़े रोजमर्रा (आम बोल-चालके विपरीत) और इसके बजाय 'से' फ़सीह (लालित्यपूर्ण) और बा-मुहावरा है।

शाद—तेरे ख़िरामे-नाज़की आयी है जब भी याद
चलने लगीं हवाएँ छलकने लगी शराब
जोश—... ... . जब याद आ गयी
.. .. नसीम ....

मेरे पहले मिसरेमे 'आयी है' और दूसरे मिसरेमे 'चलने लगीं और छलकने लगी' यानी अफआल (क्रिया) का फ़र्क था। पहले मिसरेमे 'आयी है' माज़ी क़रीब[1] और दूसरे मिसरेमे चलने लगी, छलकने लगी, माजी मुत्लक[2]। जोश साहबने इस सिक़म (ऐब) को दूर करनेके साथ-साथ दूसरे मिसरेमे 'हवाएँ' की जगह 'नसीम' कहकर शेरकी जमाल-याती (सौन्दर्यकी) अहमियतको भी चार-चाँद लगा दिये। वैसे भी 'ख़िरामे-नाज़'की रिआयतसे 'हवाएँ'के मुक़ाबिलेमे 'नसीम' का लफ्ज ज्यादा मुनासिब और मौज़ूँ (उचित) मालूम होता है।

शाद—दिले-तबाहने सींचे थे आँसुओंसे जो दाग़
तुम्हारी बज़्मे-तरबके वे बन गये हैं चिराग़
जोश—दिले-शिकस्तःने ... .
... .

जोश साहबने पहले मिसरेमे 'तबाह' की बजाय 'शिकस्त.' बना दिया। तबाहकी ब-निस्बत शिकस्त आँसुओकी रियायतसे वास्तवमे ज़्यादा मुनासिब है।

---

१. वह भूतकाल जिसमें काम अभी खत्म होना पाया जाय। जैसे किया है, आयी है। २. सामान्य भूतकाल जैसे किया, खाया।

शाद—भटक सके तो भटक जा रहे—मुहब्बतमें
सफर हो सहल तो फिर लुत्फे-जुस्तजू क्या है
जोश—जो बन पड़े तो भटक जा रहे—मुहब्बतमें
....

'जो बन पडे' का टुकडा रख देनेसे मजमून जितना बा-मुहावरा फसीह (लालित्यपूर्ण) हो गया है। उसे अहले-नजर बखूबी महसूस कर सकते है।

शाद—निगाहो-दिलमें अगर मस्तिए-शबाब नहीं
यह चाँद-रात, यह पैमानओ-सबू क्या है ?
जोश—... ... .
यह रक्सो-रंग ... .

'चाँदरात' का टुकड़ा यहाँ गरीबुलदयार (परदेशी) और महज़ तकल्लुफ (बनावटी, कृत्रिम) मालूम होता था। जोश साहबने इस तकल्लुफको दूर करनेके लिए उसकी जगह 'रक्सोरंग' के अल्फाज रख दिये। यह परिवर्त्तन करके जोश साहबने सिर्फ एक नुक्स (दोष) ही को दूर नही किया, बल्कि एक ही खान्दानके अल्फाज़ खुश उसलूबीसे एक जगह जमा करके मिसरेको बे-तकल्लुफ और पुर-कैफ (शराबकी मस्ती लिये हुए) बना दिया।

शाद—चहरोंकी रौशनी हूँ, दिलोंका ग़ुबार हूँ
आईनए - निशातो-ग़मे - रोज़गार हूँ
जोश—आँखोंकी ....
....

जोश साहबने सिर्फ पहले मिसरेमे 'चहरो' को 'आँखो'मे बदलकर शेरियतका चहरा निखार दिया है। रौशनीका तआल्लुक़ चहरेसे ज्यादा

आँखोसे है और फिर आईनेकी रिआयतसे भी आँखका लफ्ज कही ज्यादा मुनासिब मालूम होता है। चहरोंकी रौशनी कहनेमें भी अगर्चे कोई कबाहत (खराबी) नहीं। लेकिन हुस्न आँखोकी रौशनी कहने ही मे है।

शाद—दिलोंका सोज़ है मेरे हसीं तरानोंमें
मैं वोह शरार हूँ जिसपर रदाए-शबनम है
जोश—जहाने-सोज़ है, मेरे खुनक तरानोंमें
....

'दिलोका सोज' कहनेके बदले जहाने-सोज कहनेसे मआनवी तौरपर (भावकी दृष्टिसे) शेरमे ज्यादा वुसअत—(विस्तीर्णता-शक्ति) पैदा हो गयी। मेरे मिसरेमे हसी महज़-(केवल) भर्तीका लफ्ज़ था। हश्वे-क़बीह (दोषपूर्ण-अनावश्यक) न सही, हश्वेमलीह (सुन्दर होते हुए भी व्यर्थ) जरूर था। उसे खुनुक (शीतल) मे तब्दील करके जोश साहबने शेरमे लफ्जो मुनासबतका हुस्न भी पैदा कर दिया। यानी पहले मिसरेमे सोज़ (तपिश, आगकी जलन)के लिए खुनुक (शीतल) ज्यादा मुनासिब है।

शाद—जब मौजमें आते हैं शनावरके अज़ाइम
तूफ़ानकी मौजोंसे उभरते हैं किनारे
जोश— ... .
बिफ़रे हुए तूफ़ाँसे ....

शेरमे मौजकी तकरार अगर ऐब नही तो बेकैफ़ (बेलुत्फ) ज़रूर थी। जोश साहबने शेरको पुरकैफ़ भी बना दिया और मजमूनमे शिद्दत (तेज़ी शक्ति) भी पैदा कर दी।

शाद—ब्ने नवाओंको मयस्सर हैं कहाँ जामो-सुबू ?
बिजलियाँ चमकीं तो क्या, अब्रे-रवाँ आया तो क्या ?
जोश—....... .. ..
कोयलें कूकीं तो क्या.................. ....

यानी 'बिजलियाँ चमकी' की बजाय 'कोयले कूकी' बना दिया। अपने मिसरेमें बिजलियाँ और अब्रेरवाँका जिक्र मैंने तरबियए-माहौल (आनन्दमय वातावरण) पैदा करनेकी गरजसे किया था। लेकिन बिजलियोका चमकना तरबिय कैफियतके इज़्हारकी अलामत (आनन्दपूर्ण स्थितिके उल्लेख करनेका तरीका) नही है। कम-से-कम ग़ज़लिया शाइरीकी रिवायत (परम्परा) इसके कतई बरक्स (विपरीत) है। (यानी बिजलियोका प्रयोग आनन्दके लिए नही, चमन या आशियाँको बर्बाद करनेके लिए होता है) पहले मिसरेमे बेनवाओ (साधन हीनो, दरिद्रो)से लफ्ज़ मुनासबत पैदा करनेके लिए भी बिजलियोके चमकनेकी निस्बत कोयलोका कूकना ज्यादा दिलकश मालूम होता है।

शाद—हयात है कि मुसल्सल सफ़रका आलम है
हरेक साँसमें आहूए-नाज़का रम है

जोश— ....
. . .. वहशी ग़ज़ालाका रम है

आहूए-नाजकी तरकीब ऐन मुमकिन (सम्भव) है कि जोश साहब-के मज़ाके-सुखन (शाइराना सुरुचि)की लताफतपर बार (कोमलतापर भार) गुजरी हो। इसके अलावा पहले मिसरेमे हयात स्त्रीलिंग है। इसलिए दूसरे मिसरेमें 'आहू' (पुल्लिग)के बजाय ग़ज़ाल. (स्त्रीलिग) को ही तरजीह दी।

•

१. मुतालमें, पृ० ६७–१०४।

जोश मलसियानी-द्वारा इस्लाहें

पण्डित लभ्भूराम 'जोश' जिला जालन्धरके गॉव मलसियानमे १ फरवरी १८८२ ई० को जन्मे। आपके शैशवकालमे ही पिता स्वर्गवासी हो गये थे, किन्तु अपनी लगन और परिश्रमसे इतनी अच्छी योग्यता प्राप्त की कि वर्त्तमानमे आपका नाम भारत और पाकिस्तानमे बहुत आदर और सम्मानके साथ लिया जाता है और आप गजलके प्रामाणिक विद्वान् समझे जाते है। आपने कई-सौ ऐसे शब्दोको मतरूक (अव्यावहारिक) कर दिया है, जिनका अनेक शाइर प्रयोग करते है। आप प्राचीन छन्द-शास्त्रके प्रबल अनुयायी तो है ही, साथ ही आपने अपनी निजी मान्यताएँ भी जारी की है। जिससे आप-द्वारा दी गयी इस्लाहोमे कही भी झोल या दोष नही रह पाता है।

आप मुशी-फाजिल और अदीब-फ़ाजिल परीक्षाओमे पजाब-भरमे सर्वश्रेष्ठ उत्तीर्ण हुए। विद्यार्थी अवस्थासे ही शाइरीकी ओर रुचि थी। १९०२ ई० में मिर्ज़ा दागसे पत्र-व्यवहार-द्वारा मशवरए-सुखन लेते रहे। १९०५ ई०मे उनकी मृत्यु हो जानेपर फिर किसीसे इस्लाह नही ली। अपने निजी अध्यवसायसे उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए भारत एवं पाकिस्तानके इने-गिने उस्तादोकी श्रेणीमे शुमार होने लगे।

पजावके सरकारी स्कूलोमे काफी अर्से तक फार्सीके प्रधानाध्यापक रहे। १९३८ ई०मे रिटायर हुए तो मलसियानके पास नकोदरमे स्थायी तौरपर रहकर साहित्यिक सेवामे लगे हुए है।

गजलगो शुअ़रामे आपका दर्जा निहायत मुमताज है। गज़लोकी भाषा लालित्यपूर्ण बा-मुहावरा सरल और निर्दोष होती है। स्वभाव

और चरित्रकी दृष्टिसे पुराने बुजुर्गोकी प्रतिमूर्ति, सरल और भद्र स्वभावी है।

आपके कलामके कई सकलन प्रकाशित हो चुके है। भारत और पाकिस्तानमे आपके अनेक शिष्य है। आपकी 'आईनए-इस्लाह' शीर्षक १७६ पृष्ठकी पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमे ४६ शिष्योके कलाम-पर चारसौ इस्लाहोके नमूने मुद्रित है। हम उनमे-से २५ शिष्योके कलामो-पर दी गयी चन्द इस्लाहे बतौर नमूना पेश कर रहे है। इस्लाहोके साथ-साथ आपने इस्लाह देनेके कारणोपर भी प्रकाश डाला है। हमने उसी प्रकाशके सहारे अपनी भाषा-द्वारा स्वतन्त्र ढंगसे इस्लाहोपर विचार व्यक्त किया है।

कमाल[1]—आखिरी हिचकीसे उनके सामने दम तोड़कर
मुख़्तसर कहना है अपना हाले-तूलानी मुझे

जोश—एक ही....... ....
मुख़्तसर करना है ....

कौन-सी हिचकी आखिरी होगी, कोई भी मरीज़े-इश्क नही जान सकता। अत. उस्तादने आखिरीके बजाय 'एक ही' बनाया है। दूसरे मिसरेके 'कहना'को करना बनाया। क्योकि हिचकियोमें हाले-तूलानी (लम्बी हृदय-गाथा) कहना असम्भव है। उसे तो मरकर ही मुख़्तसर करना पडता है।

कमाल—एक-से-एक सख़्त तर इश्क़में हर मक़ाम है
दर्दो-अलम हलाल है, ख़्वाहिशे-दिल हराम है

जोश—' .. ..
काहिशे-दिल.... ....

---

१. श्री जगन्नाथ साहब 'कमाल' करतारपुरी रिटायर्ड हेड मास्टर।

काहिश और ख्वाहिश समान तुक होनेके कारण ललित मालूम होते है। दर्दो-अलमके बजाय 'काहिशे-दिल' (मनपर संयम रखना, इच्छाओको क्षीण करना) बनानेसे शेरमे सौन्दर्य भी बढ़ गया और शेरका अभिप्राय भी वही रहा।

कमाल—इज्तराबे-दिल[1] ही जब वजहे-सकूँ[2] होने लगा
हुस्नने खुद पर्दए-महमिलके टुकड़े कर दिये
जोश—दीदके क़ाबिल[3] है यह गुस्ताख़िए-शौक़े-नुमूद
....

कमाल साहबके दूसरे मिसरेमे दावा-ही-दावा था, उसकी दलील कही मौजूद न थी। शौक़े-नुमूदकी गुस्ताख़ी (जल्वा देखनेकी उत्सुकताकी धृष्टता)ने दलील पैदा कर दी और दोनों मिसरे क्रमबद्ध हो गये। पहले मिसरेमें 'ही' शब्द भी अधिक और व्यर्थ था। इस्लाहसे यह दोष भी दूर हो गया।

कमाल—कभी फ़रेब न जाये मेरी उम्मीदोंका
मेरी नज़र पै यही पर्दए-सराब[4] रहे
जोश—कभी तिलस्म न टूटे.........................
....

'फ़रेब न जाये' अस्पष्ट-सा था। संशोधनने शाइरके भावको स्पष्ट भी किया और मिसरेको बा-मुहावरा भी बना दिया।

कमाल—मेरी जब आँख खुलती है तो यह महसूस करता हूँ
अभी उठकर गये हो तुम मेरी आग़ोशे-वीराँ से[5]
जोश—मुझे जब होश आता है.........................
....

---

१. दिलकी बेचैनी। २, चैनका कारण। ३. देखने योग्य। ४. मृग मरीचिकाका धोका। ५. उजड़ी हुई गोदमें-से, खाली बग़लसे।

'मेरी' शब्द दोनो मिसरोमे प्रयुक्त हुआ था। अत एक मेरीको निकालनेके लिए संशोधन करना पड़ा। प्रियतमाके ध्यानमे लीन होनेपर नीद नही आती। अपितु आत्म-विस्मृति-सी हो जाती है और इस आत्म-विस्मृतिका भग होना ही होश आना कहलाता है। अत. 'आँख खुलती है' के स्थानपर उस्तादने 'होश आता है' का संशोधन बहुत ही उपयुक्त किया है।

कमाल—यह दिल, यह ज़र्फ़[1] बिचारा कहाँ से ले आये
फँसा हुआ है मुसीबतमें राज़दाँ[2] अपना
जोश—यह दिल, यह ज़र्फ़ खुदाने उसे दिया ही नही
....

'बेचारे'की जगह 'बिचारा' बाज़ारी लहज़ा रखता है। 'कहाँसे लाये' की जगह भी 'कहाँसे ले आये' कहा गया था। संशोधनसे दोनो दोष दूर हो गये।

नसीम[3]—बेदादगर[4] न हो कोई आज़ारे-जाँ[5] न हो
अब उस ज़मी पै चलिए जहाँ आस्माँ न हो
जोश—. . . . .
ढूँढेंगे वोह ज़मीन जहाँ आस्माँ न हो

दूसरे मिसरेको निखारनेके लिए सशोधन किया गया 'उस जमी पै चलिए' शब्दसे 'चलने' का भाव प्रकट होता है न कि खोजनेका।

---

१ पात्रता, योग्यता। २. हृदयका भेद जाननेवाला, मित्र। ३. श्री लक्ष्मीचन्द्र 'नसीम' नूरमहल ज़िला जालन्धर। ४. अत्याचारी। ५. अत्याचार-पीड़ित।

नसीम—रंज है, ग़म है, अलम[1] है, हसरतें[2] हैं, यास[3] है
कुछ न होनेपर भी यह सामान अपने पास है
जोश—... ... ...बेदिली है, यास है...
... ...इतना कुछ हमारे पास है

पहले मिसरेमे चार 'है' और एक 'हैं' आये है। एक ही मिसरेमे कही एकवचन और कही बहुवचन-जैसी असमानताको दूर करनेके लिए 'हसरते हैं' के स्थानपर 'बेदिली है' बनाया गया है। दूसरे मिसरेमे 'यह सामान' के बजाय 'इतना कुछ हमारे' बनाकर शेरको चमका दिया है।

नसीम—बेकसोंकी[4] दस्तगीरी[5] कोई भी करता नहीं
और अमीरोंकी तरफ बढते हैं दुनिया भरके हाथ
जोश—मुफलिसों... ... ...
मालदारों... ... ...

दूसरे मिसरेमें प्रयुक्त अमीरोकी तुलनामे पहले मिसरेमे 'बेकसो'के बजाय 'गरीबो' शब्द उपयुक्त होता। दूसरे मिसरेमे 'और' शब्द भी अनावश्यक-सा था। अतः उस्तादने पहले मिसरेमे 'मुफलिसो' परिवर्तन करके उसकी मुनासबतमे दूसरे मिसरेमे 'मालदारो' शब्दका नगीना जड़ दिया।

नसीम—एक जाने-ज़ार[6] है, जो मुब्तलाए-रंज[7] है
एक दिल है जो निसारे-जल्वए-जानान:[8] है
जोश—... ... ... जो है असीरे-क़ैदे-ग़म[9]
... ...

१. दुःख। २. अभिलाषाएँ। ३. निराशा। ४. असहायोंकी, लाचारोंकी। ५. सहायता। ६. निर्बल आत्मा। ७. रंजो-ग़मसे घिरी हुई। ८. प्रियतमाके रूपपर न्योछावर। ९. दुःखरूपी कारागारका बन्दी।

इस शेरकी रदीफ 'है' 'जानान ' काफियेके अन्तमे मौजूद है। पहले मिसरेके अन्तमें भी 'है' शब्द आया है जो कि काफियेके साथ न होनेसे रदीफ़ न होते हुए भी रदीफका धोका दे रहा है। अत इस दोषको निकालनेके लिए सशोधन किया गया।

नसीम—दह्रमें[1] जो बे-नियाज़े-जल्वए-जाना[2]नः है
होशसे वोह दूर है, वोह अक्लसे बेगानः है

जोश— .. . .
... .बेज़ार[3] .. ..

दूसरे मिसरेमे 'वोह' दो जगह प्रयुक्त हुआ था। सशोधनसे यह दोष भी निकल गया और 'बेगान.'की समानतामे 'बेज़ार' (विमुख) शब्दसे सौन्दर्य्य भी बढ गया।

नसीम—किस तरह मरते हैं अह्ले-दिल दिखा देते तुम्हें
यह तमाशा तुम अगर ख़ंजर दिखाकर देखते

जोश—.... .. .. दिलवाले दिखा देते तुम्हें
....

शाइरका उद्देश्य साहस एव उत्साह प्रकट करना था, किन्तु वह 'अह्ले-दिल' से स्पष्ट नही हुआ। अत. उस्तादने उसके बजाय 'दिलवाले' बनाकर आशय स्पष्ट कर दिया है। इस संशोधनमे विशेषता यह है कि 'दिलवाले' शब्द 'अह्ले-दिल' का ही उर्दू रूपान्तर होते हुए भी वही आशय प्रकट कर रहा है। जो 'अह्ले-दिल' से स्पष्ट नही होता था।

---

१. ससारमें। २ प्रियतमाके सौन्दर्यसे अनभिज्ञ, उदासीन। ३. अक़्लसे ख़ारिज।

नसीम—कोई मर भी जाय तो उनकी बला जाने 'नसीम'
क्या पड़ी थी उनको वह क्यों मुझको आकर देखते

जोश—.............. .... तो उनकी बलासे ऐ 'नसीम' !
....

इस इस्लाहसे यह जाहिर है कि 'बला' के साथ 'जाने' कोई जरूरी नही। 'बला'से कह देना काफ़ी भी है और खूबसूरत भी। नसीमके पहले मिसरेमें 'जाने' प्रयुक्त होनेके कारण 'जाने-नसीम' भी पढा जा सकता था। अत: उक्त संशोधनसे उपहास्यास्पद दोष भी निकल गया।

नसीम—दाद दे कौन हमारे ग़मे-उल्फतकी 'नसीम'!
कोई 'मजनूँ'[1] नहीं, 'वामिक़'[2] नहीं, 'मंसूर'[3] नहीं

जोश—....... .. . . 'मेरे शोरे-मुहब्बतकी 'नसीम' !
....

दूसरे मिसरेमें प्रेमोन्मत्तों (दीवानगाने-इश्क)का उल्लेख हुआ है। अत: पहले मिसरेमे 'गमे-उल्फत' कहना कुछ उचित न था। दीवाने शोरोगुल करते रहते है। अत: उस्तादने गमे-उल्फतकी बजाय 'शोरे-मुहब्बत' बनाया है।

नसीम—क्या ख़ौफ क़यामतका[4] है किस बातका डर है
हाँ शौक़से बेदाद[5] करें, जौर[6] करें आप

जोश—किस बातका अन्देशा है,... ... .
....

---

१. लैलीका आशिक़। २. अरबका एक प्रेमी जो 'अज़रा' पर आसक्त था। ३. एक महात्मा जिसे अनलहक़ (मै ख़ुदा हूँ, मै ब्रह्म हूँ) कहनेके अपराधमें सूलीपर चढा दिया था। ४. प्रलयका। ५. अत्याचार। ६. ज़ुल्म।

कयामतका जिक्र यहाँ गैर जरूरी था। सशोधनसे पहले मिसरेके दोनों हिस्सोमे एकरूपता आ गयी और प्रवाह भी बढ गया।

नसीम—हो गया गुम वो ले के नामए-शौक[1]
नाम:बरका[2] कोई पता न मिला

जोश—नामए-शौक़ तो है, नामए-शौक़
नाम:बरका भी कुछ पता न मिला

नामए-शौक गुम हो गया की जगह यह कहना कि 'नामए-शौक लेकर नाम बर गुम हो गया' बहुत हल्की जबान है और लालित्यपूर्ण भी नही। सशोधनसे शेर इतना दिलकश और बयान इतना ज़ोरदार हो गया कि तारीफ नही हो सकती।

नसीम—सितम[3] उठा, गमो-कुल्फत[4] उठा, अज़ाब[5] उठा
उठा 'नसीम' उठा और बेहिसाब उठा

जोश— .. ....
.. . . रंज बेहिसाब उठा

दूसरा मिसरा कमज़ोर था। यह भी स्पष्ट न था कि सितम और गमो-कुल्फत या अज़ाबमे-से कौन-सी चीज़ बे हिसाब उठायी जाये? सशोधनसे यह त्रुटि ठीक हो गयी।

नसीम—आरज़ूएँ[6], हसरतें[7], एक-एक करके मिट गयीं
एक मिट जानेकी हसरत[8] अब हमारे दिलमें है

जोश—और जितनी हसरतें पैदा हुई थीं मिट गयीं
....

---

१. प्रेमीका पत्र। २. पत्रवाहकका। ३. जुल्म। ४. रंज एव कष्ट। ५ यातना। ६. इच्छाएँ। ७ लालसाएँ। ८. तमन्ना।

उक्त परिवर्त्तनसे दूसरे मिसरेके अन्दाजे-बयानमे ज्यादा रब्त पैदा हो गया।

नसीम—हर ज़ुल्म उठाते हैं, हर रंज उठाते हैं
जी छोड़के हम लेकिन फरियाद नहीं करते

जोश—गो ज़ुल्म उठाते हैं दुःख-दर्द भी सहते हैं
....

पहले मिसरेमे दो दफा 'उठाते है' कहना उचित न था। यह दोष संशोधनसे दूर हो गया। और 'भी' के इज़ाफेसे मिसरेमे जोर आ गया।

नसीम—मै नोशको[1] ऐ जाहिद! इंकार नहीं अच्छा
कमबख्त जवानीको बरबाद नहीं करते

जोश—... . . . .
यूँ लोग ....

दूसरे मिसरेसे यह जाहिर नही होता था कि जवानीको कमबख्त कहा गया है या जाहिदको। कर्त्ता कौन है यह भी स्पष्ट नही था। संशोधनसे यह दोनो त्रुटियाँ दूर हो गयी।

नसीम—एक तूफाने-शबाब[2] और दूसरे तूफ़ाने-इश्क़
बहरे-उल्फतका[3] नजर आता नहीं साहिल[4] मुझे

जोश— .. ..और इस पै यह तूफ़ाने-इश्क़
....

---

१ सुरासेवीको। २ जवानीकी बाढ। ३ प्रेम-समुद्रका। ४ किनारा।

सशोधनसे मिसरेमे जोर आ गया।

नसीम—बहरे-उल्फतके[1] जो शनावर[2] हैं
मौतके घाट उतारे जाते हैं

जोश—जो शनावर हैं बहरे-उल्फ़तके
....

उक्त शेरमे 'जाते' काफिया और 'है' रदीफ है। पहले मिसरेके अन्तमे 'है' आनेसे रदीफका धोका होता है। हजरत 'जोश' ऐसे लफ्जको पहले मिसरेमे रखना दोष समझते है, जो दूसरे मिस्रेकी रदीफ हो। अत आपने शब्दोके हेर-फेरसे उक्त दोष दूर कर दिया।

नसीम—तू मेरी क़ैदे-खयालीसे निकल सकता नहीं
रात-दिन आठों पहर तेरा तसव्वुर[3] दिलमें है

जोश—'तू मेरी कैदे-मुहब्बतसे.... . . ..
तेरी सूरत दिलमें है, ...

'खयाल' की जगह 'मुहब्बत' बहुत उपयुक्त संशोधन है। खयालीके मायने फर्जी भी होते हैं। इसलिए यह सूरत अस्पष्ट थी। दूसरे मिसरेमे जो परिवर्त्तन किया गया, उससे शेरमे जान पड़ गयी।

हुमा[4]—मुमकिन है कि चलती हुई आँधी रुक जाय
मुमकिन है कि गिरती हुई बिजली रुक जाय
लेकिन यह महाल[5] है कि रंजो-ग़ममें—
आँखोंसे उमड़ती हुई नदी रुक जाय

---

१. प्रेम-समुद्रके। २. तैराक। ३. ध्यान, खयाल। ४. मेहता ब्रह्मदत्त 'हुमा' जालन्धर। ५. मुश्किल।

जोश—'...................................
....
.... जोशे-ग़ममें
....

उक्त रूबाईके चौथे मिसरेमें प्रयुक्त 'उमड़ती हुई' के लिहाजसे 'जोशे-गम' का संशोधन उचित है।

हुमा—एहतराज़े-हुस्नसे[1] दिल शिकस्ता[2] हो न इश्क़ !
एहतराज़े-हुस्न भी एहतरामे-इश्क़ है[3]

जोश—..... ....हो न तू
यह अदाए-ख़ास भी ....

'एहतराजे-हुस्न' शेरमें दो बार आना उचित न था। अतः 'यह अदाए-खास भी' के संशोधनसे यह दोष भी निकल गया और 'एहतरामे-इश्क' का समर्थन भी हो गया।

हुमा—क्या बुझायेंगे अश्क दिलकी आग
जब वे ख़ुद आतशीं शरारे[4] हैं
....
वे तो ख़ुद ....

तनिक-से परिवर्त्तनसे शेर आकर्षक हो गया।

हुमा—दिल मुहब्बतमें बेक़रार भी है
और तस्कींसे[5] हमकनार[6] भी है

जोश—..................................
बेक़रारीका पर्दादार भी है

---

१. रूप-द्वारा उपेक्षा किये जानेसे। २. ऐ इश्क़! साहस न तोड़, हिम्मत न हार। ३. इश्क़का सम्मान है। ४. आगकी चिनगारियाँ। ५. तसल्ली मिलनेसे। ६. सन्तुष्ट।

शब्दार्थकी दृष्टिसे दोनो मिसरे परस्पर प्रतिकूल थे। संशोधनसे यह प्रतिकूलता इस खूबीसे दूर की गयी कि शेरका भाव और शाइरका आशय अक्षुण्ण बना रहा।

हुमा—देखकर गुलको हो गये वे खुद
यह न समझे कि साथ खार[1] भी है
जोश— खिल गये नाफ़हम[2]
.. ..

गुलोको देखकर कौन वेखुद हो गये ? कर्त्ताका पता न चलता था। 'नाफहम' के इजाफेने यह दोष भी दूर कर दिया और 'वेखुद' की जगह 'खिल गये' वनाया जो कि गुलके लिए बहुत ही मुनासिब है।

साहिर[3]—बात बिगड़ जाये न कहीं
बिगड़ी बात बनाने से
जोश—और . . .
. . ..

पहली सूरत भी अच्छी थी। मगर शुरूमे लफ्ज़ 'और' ने अन्देशेको ज्यादा ज़ोरदार वना दिया। अत मिसरा और भी वुलन्द हो गया।

साहिर—न आह गर्म, न तबअ्-[4]जवाँ न जोशे-तलब[5]
यह बे दिली[6] यह .गुलामी, यह बेहिसी[7] क्या है
जोश—.... ... . 'न अज़्मे-[8]जवाँ न जोशे-तलब
. ...

---

१. काँटा। २, बेअक्ल, मूर्ख। ३. श्रीराम प्रकाश 'साहिर' होशियारपुरी। ४ तबीयतमें जवानी। ५. इच्छाओंमें उमंग। ६. बुझी हुई तबियत। शुष्क हृदयपना। ७. अकर्मण्यता। ८ युवकोचित संकल्प, दृढ धारणा।

'तबअ्' को केवल 'अज़्म' में परिवर्तन करनेसे शेर जोरदार बन गया।

साहिर—मुअ़म्मे[1] से नहीं कम यह ह़क़ीक़त[2]
कभी शोख़ी कभी शर्मो-ह़या है

जोश—.................. ....तलव्वुन[3]
....

दूसरे मिसरेमें प्रयुक्त 'कभी शोखी कभी शर्मो-ह़या' के मुकाबिलेमें पहले मिसरेमें तलव्वुन (कभी कुछ-कभी कुछ) ही अधिक उपयुक्त है। 'ह़कीकत' शब्द यहाँ ठीक चस्पाँ नहीं होता था।

साहिर—उसकी मासूम[4] निगाहोंका फ़सूँ[5] तो देख
आज अह़बाब[6] भी अग़ियार[7] नज़र आते हैं

जोश—उसकी बेगाना रवी[8] का यह फ़सूँ तो देखो
....

'मासूम' शब्द यहाँ व्यर्थ था। उसका दूसरे मिसरेसे कोई मेल न था। अत. दूसरे मिसरेमे प्रयुक्त 'अगियार' की मुनासबतके लिए पहले मिसरेमें बेगाना रवीका संशोधन करना पडा।

साहिर—अबके गुलशनमें[9] अजब रंगसे आयी है बहार
गुल नज़र आते नहीं ख़ार[10] नज़र आते हैं

जोश—...... .. ..
शाख़े-गुल[11] पर भी हमें ....

दूसरा मिसरा केवल भर्तीका था। संशोधनसे शेरमें निखार आ गया।

---

१. पहेलीसे। २. वास्तविकता। ३ रंग बदलना, कभी कुछ कभी कुछ। ४, भोली-भाली। ५. चमत्कार,जादू। ६. इष्ट-मित्र। ७. ग़ैर, शत्रु। ८. परायेपनका रंग-ढग। ९. उद्यानमें। १०. काँटे। ११. फूलोंकी टहनीपर।

क़ैस[1]—पुरनूर[2] है दिन-रात भी तारीक[3] नहीं है
रौशन हो अगर दिल तो हर-इक चीज़ हसीं[4] है

जोश— ... .

कुछ हुस्ने-नज़र[5] हो तो ....

'हसी'की मुनासबतसे 'कुछ हुस्ने-नजर' ज्यादा खूबसूरत है। हुस्नको देखनेके लिए नज़रका होना लाज़िमी है।

क़ैस—शगूफ़े[6] दम-ब-खुद, गुल दिल-गिरफ़्ता[7], नख्ल पज़मुर्दा[8]
ख़िज़ाँ परवर हर इक़दामे-सबा[9] है, और मैं चुप हूँ

जोश—.......... ... .गुल चाक दामन[10].......... ....
....

गुंचे (कली)को दिलगीर (दुखी) या दिल गिरफ्त. (खिन्न चित्त) कहा जाता है। उक्त शेरमे गुलको दिलगिरफ्तः कहा गया था। अत उस्ताद ने 'गुल दिल गिरफ्तः' को 'गुल चाक दामन' बनाया।

क़ैस—हुस्नका तो कोई गुनाह नहीं
इश्क खुद बेकरार हो के रहा

जोश—........ .... क़ुसूर नहीं
....

'गुनाह' और 'कुसूर' यद्यपि समानार्थक हैं, किन्तु समानार्थक शब्दोके चुनावमें परख और सुरुचिका होना आवश्यक है। कौन शब्द कहाँ उचित एवं ठीक चस्पाँ होगा। शाइरके लिए इस विवेक और

---

१. श्री अमरचन्द 'क़ैस' बसी कलाँ जिला होशियारपुर। २. प्रकाशवान। ३. अँधेरी। ४. सुन्दर। ५. सुरुचिपूर्ण दृष्टि। ६. कलियाँ। ७. फूल खिन्नचित्त। ८. वृक्ष कुम्हलाये हुए। ९. वायुका हर झोंका पतझड़का सहायक। १० फूलोंका दामन फटा हुआ।

चुनाव-कौशलका होना आवश्यक है। उस्तादने 'गुनाह' के बजाय 'कुसूर' का नगीना जड़कर शेरको चमका दिया।

कैस—किस महरे-दरख़्शाँको[1] देखा है मेरे दिलने
अब महरे-दरख़्शाँ[2] भी साया[3] नज़र आता है

जोश—किसके रुखे-ताबाँको[4] देखा है निगाहोंने
खुरशीदका पर्तौ[5] भी ....

देखना दिलका काम नही, आँखो या निगाहोका काम है। पर्तौ-(प्रतिबिम्ब) को 'साया' (परछाईं) कहना उचित मालूम देता है। बनिस्बत इसके कि 'खुरशीद' को साया कहा जाय।

कैस—इसी डरसे देखा न तस्वीरको भी
मबादा[6] वो मैली हो शौक़े-नज़रसे

जोश—.... ....
....गर्दे-नज़रसे[7]

शौक़े-नज़र (उत्सुक दृष्टि) से तस्वीरका मैला होना सम्भव नही। नज़र और निगाहके लिए 'गर्द' का प्रयोग भी लालित्यपूर्ण और मकबूल होता है, और वही यहाँ ठीक मालूम होता है। किसीका यह मिसरा मशहूर है—

'मिट्टी वे दे गये मुझे गर्दे-निगाहसे'

कैस—कहीं महशर बपा न हो जाये
दिल हमारा हमारे बसमें नहीं

जोश—कोई महशर बपा न कर डाले
....

तनिक-से हेर-फेरसे कलाममे रब्त बढ़ गया।

---

१. ज्योतिर्मय सूर्यको, आभायुक्त रूपवतीको। २. चमकता सूर्य। ३. परछाईं। ४. प्रकाशमान मुखको। ५ सूर्य्यका प्रतिबिम्ब। ६. ऐसा न हो। ७. दृष्टिके मैलसे। ८. प्रलय न आ जाये।

साहिर[1]—दुनियाकी हक़ीक़त[2] न खुली है न खुलेगी
कहनेको तो सब कुछ है मगर कुछ भी नहीं है

जोश—............ .. ... है फकत एक दिखावा
....

अस्ल मिसरेसे जाहिर होता है कि दुनियामे हकीकत तो है, मगर किसीपर नही खुलती। दूसरे मिसरेमें इस हकीकतसे इन्कार किया गया है। इसी विरोधाभासको दूर करने और दोनो मिसरोमे सम्वन्ध बनानेके लिए जो संशोधन किया गया, उससे शब्दार्थका दोष भी जाता रहा।

साहिर—सबक देता रहा हूँ चश्मे-तरको[3] ज़ब्ते-गिरयः[4]का
मगर भीगी हुई फिर आस्तीं मालूम होती है

जोश—बहुत ताकीद[5] की थी चश्मे-तरको ज़ब्ते-गिरयःकी
. . . .

बयानमे जोर पैदा करनेके लिए यह संशोधन बहुत उचित और आवश्यक था।

साहिर—बेताबी-ओ-मजबूरी, मजबूरी-ओ-बेताबी
महफ़ूज़ खुदा रक्खे अब हाल यह दिलका है

जोश—..... .. ..
अब शक्ल यह दिलकी है . . . . . .

दूसरे मिसरेके दोनो अंशोमे इस संशोधनसे मुकाबिलेकी शान पैदा हो गयी।

---

१. प० रघुवीरदास 'साहिर' स्यालकोटी, वर्तमान निवासस्थान जालन्धर। २. वास्तविकता। ३. अश्रुपूर्ण नेत्रोंको। ४. न रोनेका, आँसुओंको रोकनेका। ५ समझाया था, हुक्म दिया था।

साहिर—मुझे महशरमें[1] भी औरों पै फौक़ीयत[2] रही हासिल
हुआ मेरे गुनाहोंका हिसाब आहिस्ता-आहिस्ता
जोश—सुना दे फ़ैसला जो कुछ भी हो ऐ दावरे-महशर[3]।
न कर ···· ······· ·········· ·· ········· ·· ·······

अस्ल शेरका आशय यह था कि मुझे महशरमे ज्यादा वक्त दिया गया। इसमें कोई खास शेरियत न थी। साथ ही यह भाव वास्तविकताके भी अनुकूल न था। संशोधनसे यद्यपि शेरका आशय बदल गया, परन्तु यह अपराधीकी मानसिक स्थितिको बहुत खूबीसे स्पष्ट कर रहा है। अपराधी अपने जुर्मोका निर्णय यथाशीघ्र चाहता है, न कि विलम्बसे।

ज़ार[4]—लाख बद्बख़्तोंका[5] वह बद्बख़्त है
जो फ़रेबे-आशिक़ी[6] खाता नहीं
जोश—लाख नादानोंका वह नादान है
····· ··· ···· ············ · ·

'बद्बख़्ती' मुसीबतके लिए कही जा सकती है। मगर यहाँ तो फ़रेबे-आशिकीको एक नेमत बताया गया है। इस नेमतसे वंचित होना बद्बख्ती (दुर्भाग्य) नही, नादानी (मूर्खता) है और यहाँ यही लफ्ज़ मुनासिब है।

ज़ार—अपनी आयीसे दिले-दीवाना बाज़ आता नहीं
हर ख़तापर होती है, सौ-सौ परेशानी मुझे
जोश—अपनी शोरिशसे ···· ·· ····· ··· · ····· ·
हर फ़ुग़ाँपर ······ · · ···· ·· ······· ··

---

१. महाप्रलयके न्यायालयमें। २. विशेषता, प्रधानता। ३. महशरके न्यायाधीश, ख़ुदा। ४. पण्डित विशनदास 'ज़ार' नडाला ज़िला-कपूरथला। ५. अभागोंका। ६. प्रेममें धोका।

'अपनी आयी' यहाँ जिदके अर्थमे है। इसे पंजाबी लहजा कहा जा सकता है। उर्दूमे 'आयी' मौत और कजाके लिए ही प्रामाणिक और लालित्य पूर्ण है। दीवानेके साथ शोरिश (शोर-गुल) शब्दका बहुत समीपका सम्बन्ध है। अत यहाँ 'अपनी शोरिश' कहा जाये तो उचित होगा। इसी प्रकार ख़ताकी जगह भी यहाँ फुगाँ (आह) कहना बरमहल है। फुगाँ भी शोरिश और दीवानगीसे सम्बन्ध रखती है।

अर्श[1]—मैकदेके दर पै[2] यह बेवक़्त दस्तक किसने दी ?
राहे-हस्तीसे[3] कोई भटका हुआ इंसाँ न हो।

जोश— .. ..
दैरो-काबाका....... ... .

राहे-हस्तीसे भटककर मैकदेके दर पै पहुँचना मैकदेकी प्रधानता एवं श्रेष्ठता प्रकट नही करता। हाँ दैरो-काबा (काशी और काबे)से भटककर मैकदेके दर पै पहुँचना सम्भव है। क्योकि वहाँ भूले-भटकेको आश्रय मिल सकता है, और वह दैरो-काबासे छुटकारा पा सकता है।

अर्श—देखते हैं किस क़दर होती है अब ताख़ीर[4] और
माइले-लुत्फ़ो-करम[5] उनकी नजर बरसोंसे है

जोश—सोचता हूँ.... ....
....

पहले मिसरेमे कर्त्ताका उल्लेख नही था। इसलिए 'देखते है' को 'सोचता हूँ' मे परिवर्तित करना पड़ा। साथ ही इतनी ताख़ीर (देरी) होनेपर सोचमे पड़ जाना वैसे भी स्वाभाविक है।

---

१. 'अर्श' सहबाई कच्ची छावनी जम्बू। २. मदिरालयके द्वारपर। ३. जीवन-मार्गसे। ४. देरी। ५. कृपापूर्ण व्यवहारके लिए उत्सुक।

अर्श—खुदाका शुक्र राहत[1] और ग़म[2] पहलू-ब-पहलू[3] हैं
वगर्ना ज़िन्दगी बे कैफ़-सा[4] अफ़साना[5] बन जाये

जोश—ग़नीमत है कि ···· ······ ······· · · ···
नहीं तो······ ············ ·· ······· ·

शुक्रके बाद 'है' भी आना चाहिए। 'वगर्ना' फ़ारसियत है। जोश साहब जहाँतक सम्भव होता है, उर्दू-शब्दोका प्रयोग करते है। उर्दूके लालित्यपूर्ण शब्दोके बजाय व्यर्थमे अर्बी-फ़ार्सी शब्दोंके व्यवहारको अनुचित समझते है। अतः सर्वसाधारणमे अप्रचलित शब्द वगर्नाके स्थानपर 'नही तो' शब्द रखना आपने उचित समझा।

अर्श—ठहर ऐ अजल[6]! जानिबे-मैकदा[7] हम
ज़रा देख लें लौटकर जाते-जाते

जोश—················ ········ ······
···············इक नज़र जाते-जाते

दूसरे मिसरेमे 'लौटकर' बाजारी शब्द है। 'पलटकर' होना चाहिए था, किन्तु इससे वज़न बढ़ता था। अत. 'लौटकर' के बजाय 'इक नज़र' बनाया।

अर्श—इंसान के हाथों इंसाँपर, क्या-क्या बीती, क्या-क्या गुज़री
रूदाद[8] ज़माने की सुनकर पत्थरका कलेजा हिलता है

जोश—············ ·· ·························
यह दर्द भरी बातें सुनकर·· ·· ············

दूसरे मिसरेसे सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए इशारा भी लाज़िमी था। 'रूदाद'में वह खूबी न थी जो दर्द-भरी बातोंसे ज़ाहिर होती है।

---

१. सुख चैन। २. दुःख। ३. साथ-साथ। ४. नीरस-सी। ५. किस्सा। ६. मृत्यु। ७. मदिरालयकी तरफ। ८. कहानी, आपबीती।

अर्श—इतनी ख़ता[1] हुई कि तुझे बेवफ़ा कहा
जुज़[2] इसके हमने और कहा भी तो क्या कहा
जोश—यह तो बजा कि हमने तुझे बेवफा कहा
इसके सिवा कुछ और कहा भी तो क्या कहा ?

दूसरे मिसरेमे 'जुज़ इसके' की बजाय 'बजुज इसके' कहना लाजिम था। 'जुज'का इस्तेमाल फार्सी लफ्ज़के साथ होता है। मसलन—'जुज-मर्ग'। पहले मिसरेमे ख़ता तो तस्लीम कर ली थी। मगर इस इकरारमे दूसरी तरफसे शिकायतका इज़हार नुमायाँ न था। इसको प्रकट करनेके लिए जो परिवर्तन किया गया वोह बहुत उपयुक्त है।

अर्श—थी मसलहत जो कर लिया हर जब्र इख़्तियार
कुछ बात थी जो उनकी जफाको वफा कहा
जोश—कुछ राज़ था[3] कि जब्र भी करना पड़ा क़ुबूल
कुछ बात थी कि·· ········ ····· ···· ·· ·

शेरमे मुकाबिलेकी शान पैदा करनेके लिए संशोधन करना पड़ा, जो बहुत खूब और उचित है।

अर्श—जो खिलखिलाके हँस पड़ी गुलशन में हर कली
बादे-सबाने[4] कानमें चुपके-से क्या कहा
जोश—सुनते ही मुस्करा उठी···· · ·· · · · · ··
बादे-सबाने उससे ख़ुदा जाने क्या कहा !

कलीका खिलखिलाकर हँसना खिलाफे-वाकअ् (वास्तविकताके विरुद्ध) है। अत: उस्तादने संशोधन करके यह दोष निकाल दिया।

---

१. अपराध, गलती। २. अतिरिक्त, इसके सिवा। ३. भेद। ४. वायुने।

कँवल[1]—मेरे हालपर और इतनी नवाज़िश[2]
उन्हें आज फिर मह्‌र्बां देखता हूँ
जोश—ख़ुदा जाने क्या आफ़तें सरपर आयें
....

पहले मिसरेमें 'और' का लफ़्ज मौजूदा सूरतमें कुछ अच्छा न था। या तो इस तरह कहा जाता—'मेरा हाल और उसपै इतनी नवाजिश'। इस्लाह करते वक्त यह उलझन भी नजर आयी कि शाइरका आशय आखिर क्या है? ये सब बातें नये मिसरेसे ठीक हो गयी और अस्ल भाव बिलकुल स्पष्ट हो गया।

कँवल—नक़ूशे-उम्रे-गुरेज़ाँ[3] तलाश करता हूँ
मैं अब भी ऐशके सामाँ तलाश करता हूँ
जोश—'....... . .. .
अदममें ज़ीस्तके[4].......... ...

इस्लाहसे मतला बहुत बुलन्द हो गया। अब शेरका भाव यह हो गया कि उम्रे-गुरेजाँके नकूश (व्यतीत हुई आयुके चिह्न) तलाश करना ऐसी ही बात है जैसे कोई अदममे जीस्तके सामान तलाश करे।

कँवल—हमारी वजअ़दारी[5] ही रही हर गाम[6] पर हाइल[7]
न तू होता सख़ी[8] तो हाथ फैलाने कहाँ जाते?
जोश—' . .. .ज़िन्दगी दुश्वार कर देती
... .

---

१. प्रोफेसर कॅवल साहब, गाँधी कॉलेज अम्बाला। २. कृपा। ३. गुजरी हुई उम्रके क्षण। ४. मृत्युलोकमें जिन्दगीके। ५. आन-बान। ६. पग-पगपर। ७. रुकावट। ८. दाता।

'रही हर गाम पर हाइल' इससे शाइरका आशय तो किसी हदतक प्रकट होता है, किन्तु वज़अदारीसे जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, उनका उल्लेख पहले मिसरेमे नही था। सशोधनसे वह त्रुटि जाती रही।

कँवल—उधर वे हो गये आमादए-जौरो-जफ़ा[1] हमपर
इधर हम है कि राहो-रब्त[2] हरगिज़ कम नहीं करते
जोश—उधर वे है कि बढ़ती जा रही है वे रुखी उनकी
....

इस्लाहसे दोनो मिसरोमे मुकाबिलेकी शान पैदा हो गयी।

कँवल—न हिम्मत लब-कुशाईकी[3] न जुरअत है तकल्लुमकी[4]
मगर जब पूछते हो मुद्दआ[5] कहना ही पड़ता है
जोश—... ....न जुरअत बात करनेकी
. . . .

'तकल्लुम' एक भारी लफ्ज़ था। उसकी जगह हल्का-फुल्का आम-फहम-'बात करना' लफ्ज़ बनाया गया। जुरअतके बाद 'है' भी बेज़रूरत था। इससे पहले मिसरेके दोनो टुकड़ोमे अन्दाज़े-बयानकी समानता न होने पाती थी।

कँवल—यह अपने-अपने मुक़द्दरकी बात है ऐ दोस्त!
कोई वफ़ाके लिए है, कोई जफ़ाके लिए
जोश—यह अपनी-अपनी तबीयतकी बात है ऐ दोस्त!
....

दूसरे मिसरेका मज़मून मुकद्दर (भाग्य) से कोई सम्बन्ध न रखता था। अपनी-अपनी तबीयत और स्वभावको ही जाहिर करता था। इसीलिए 'मुकद्दर' की जगह 'तबीयत' इस्लाह दी गयी।

---

१. अत्याचार करनेपर उतारू। २. सम्बन्ध, मेल मिलाप। ३. ओठ खोलनेकी। ४. वार्त्तालापकी। ५. मंशा, मतलब।

हुनर[1]—लगता नहीं है जी किसी [2]उनवाँ तेरे बग़ैर
फिरता हूँ दश्त-दश्त[3] परेशाँ तेरे बग़ैर
जोश—मिलता नहीं [4]सकूँ.......................
....

दश्त-दश्त फिरनेका मतलब यही हो सकता है कि कहीं सकून नही मिलता। इस्लाहमे यही बात दरशायी गयी है। अस्ल शेरमें भी यही भाव था, किन्तु इतना स्पष्टीकरण न था।

हुनर—जिसके होनेका [5]गुमाँ काबेमें बुतख़ानेमें है
नूर[6] उस [7]जल्वेका मेरे दिलके काशानेमें[8] है
जोश—जुस्तजू[9] जिसकी हरम[10] में और........
....

लफ्ज़ 'गुमाँ' यहाँ बरमहल (विषयोचित) नही था। गुमाँका अर्थ सन्देह, शक आदि हैं। पहले मिसरेमें जो बात सन्देहपूर्ण थी, वही दूसरे मिसरेमे विश्वस्त हो गयी थी। साथ ही 'काबे और बुतखाने'की जगह 'काबेमें, बुतख़ानेमें' अंश भी जबानके खिलाफ था।

मंसूर[11]—खाते हैं ठोकरें ज़मानेकी
अपना ग़ुस्सा जो पी नहीं सकते
जोश—जलते रहते हैं आगमें दिन-रात
....

गुस्सा आग ही तो होता है। दूसरे मिसरेका ठोकरोसे कोई

---

१. श्री पूरनसिंह 'हुनर' अमृतसरी। २. किसी भी प्रकार। ३. यत्र तत्र, जंगल जंगल। ४. चैन। ५. सन्देह। ६. प्रकाश। ७. प्रकाश पुंजका। ८. हृदय-मन्दिरमें। ९. तलाश। १०. मस्जिदमें, मन्दिरमें। ११. श्री ज्ञानचन्द 'मंसूर' हाल मकाम पानीपत।

शाब्दिक सम्बन्ध न था। शब्दार्थसे हो तो हो। सशोधनसे शाब्दिक और शब्दार्थसम्बन्धी दोनो बाते ठीक हो गयी।

मंसूर—क़ाबिले-याद हम नहीं लेकिन
वोह हमें भूल भी नहीं सकते

जोश—...... . ...
तुम ....

उक्त शेरके दूसरे मिसरेमे 'वोह' की जगह 'तुम' बनाया गया है। शेरमे माशूकको परोक्ष रूपमे स्मरण किया गया था। इस्लाहमे उसे प्रत्यक्ष रूपमे सम्बोधित किया गया है। स्पष्ट है कि यह ढंग अधिक रुचिकर एवं पसन्दीद है।

मंसूर—चाके-तक़्दीर[1] वे सियेंगे क्या ?
चाके-दामन[2] जो सी नहीं सकते

जोश—चाके-दिलको वे सी सकेंगे क्या
....

बात तो वही है मगर तक्दीरके चाक (फटे हुए भाग्य) को सीना तो दूरकी बात है, और दिलका चाक सीना नज़दीककी बात। आशय जब एक ही हो तो दूर जानेकी क्या आवश्यकता ?

रहबर[3]—खुशीके दिनसे शामे-ग़मका[4] रुत्बा[5] कम नहीं होता
ग़मे-इशरतका[6] मतलब क्या ग़मे-पैहम[7] नहीं होता ?

जोश—...... .. ..
मसर्रतका[8] नतीजा क्या........... . . . .?

१. फटे हुए भाग्यको। २, फटा हुआ दामन। ३. श्री स्वदेशचन्द्र जौहरी 'रहबर' बदायूँनी। ४. दुःखरूपी सन्ध्याका। ५. पद, महत्ता। ६. भोगविलासरूपी कष्टोंका। ७. लगातार दुःखोंका। ८. आनन्दका।

'गमे-इशरतका मतलब' यह अस्पष्ट अंश था। दोनों मिसरोंमें सम्बन्ध भी नाममात्रका था। संशोधनने यह दोष भी दूर कर दिये और शेर भी चुस्त हो गया।

फ़ाज़िल[1]—वह हाल है कहना ही पड़ा हमको भी आख़िर
अच्छे है वही लोग जो उल्फ़त नहीं करते

जोश—आख़िर हमें कहना ही पड़ा हाले-दिल अपना
... .

पहले मिसरेमे 'भी' व्यर्थ था। उसे निकालनेके लिए यह संशोधन करना पड़ा।

फ़ाज़िल—दिलमें खौफ़े-खुदा नहीं बाक़ी
आदमी आदमीसे डरता है

जोश—अब खुदाका तो डर किसीको नहीं
. . . .

दोनों मिसरोंमे परस्पर सम्बन्ध नही था। शेरका अर्थ यह होता था कि खौफे-खुदा बाकी न रहनेसे आदमी आदमीसे डरने लगा। या यह कि आदमी अगर आदमीसे डरता है तो इसका यह मतलब है कि खुदाका खौफ बाकी नही रहा। दोनो सूरतोमे शेरका आशय उलझा हुआ था। संशोधनसे शेरका आशय स्पष्ट हो गया, और दोनो मिसरोंमे सम्बन्ध भी स्थापित हो गया।

फ़ाज़िल—ऐ दिल! वे उल्टी गंगा इस दम बहा रहे हैं
घर मेरे बे-बुलाये तशरीफ ला रहे हैं

जोश—क्या जाने उल्टी गंगा वे क्यों बहा रहे हैं
क्यों घरमें ....

---

१. सैय्यद फाजिल चंदी साहपुरी नवाब शाह मलिक सिन्ध।

'इस दम' 'जिस दम' 'किस दम' ये शब्द अब व्यवहार योग्य नहीं। बोल-चालसे भी खारिज है। इनकी जगह 'इस वक्त' और 'किस वक्त' ही बोलते है। 'मेरे घरकी जगह' भी 'घर मेरे' कहा गया था। ये दोष दूर करनेके लिए सशोधन किया गया।

तमन्ना[१]—क्या जाने कैसा आया तख़रीबका[२] ज़माना
इंसान चाहता है, इंसानको मिटाना
जोश—क्या आ गया है या रब! तख़रीबका ज़माना
....

पहले मिसरेकी वन्दिश सुस्त थी, 'या रब' शब्दसे मज़मूनके फरियादी अन्दाजमें जोर पैदा हो गया।

तमन्ना—शमए-सोज़ाँकी[३] तरह जो नहीं होते रौशन
वे कभी ज़ीनते-महफ़िल[४] नहीं होने पाते
जोश—शमए-महफ़िलकी ....
....

ज़ीनतके लिए 'सोजाँ' शब्द व्यर्थ और वेमौके था।

तमन्ना—हुस्नवालोंका यह अन्दाज़े-तबाही तौबा
क़त्ल करके भी वह क़ातिल नहीं होने पाते
जोश—हुस्नवालोंकी यह मासूम जफ़ाएँ[५] देखो
....

दूसरे मिसरेके मजमूनको 'मासूम जफ़ाओ' ही से सम्बन्धित करना चाहिए था। अन्दाज़े-तबाही और तौबाकी व्याख्याका दूसरे मिसरेमे कही भी, उल्लेख नहीं था।

---

१. श्री रामकिशन 'तमन्ना' अम्बालवी। २. विध्वंसका। ३. जलती हुई शमाकी तरह। ४. जल्सोंकी रौनक़। ५. भोलीभाली जफ़ाएँ।

तमन्ना—ख़्वाहिशे-खुल्दमें[1] दुनियाकी भी इशरत[2] छोड़ी
मुझको वाइज़की हिमाक़त पै हँसी आती है

जोश—.................................. ....

मुझको नादानिए-वाइज़ पै.................... ......

'हिमाकत' गजलकी जबानमे शामिल नही है ।

तमन्ना—हाय उनका यह पूछना मुझसे
"किस लिए अश्कबार[3] बैठे हैं?"

जोश—......... .. ..

आप क्यों ....

दूसरे मिसरेमे 'बैठे हो' कहना लाज़िम था या आप कहकर सम्बोधन करना था। 'आप' शब्दसे आदरका भाव भी प्रकट होता है। पहले मिसरेके 'हाय' शब्दसे भी उसका सम्बन्ध और अधिक हो गया है।

सागर[4]—अल्लाहरे आज़ादिए-जुम्हूरका मंज़र[5]
हर शख़्सको पामाले-सितम[6] देख रहे हैं

जोश—कैफ़ीयते-आज़ादिए-जम्हूर न पूछो
....

पहले मिसरेसे यह ध्वनित होता था कि जनता-राज्य (आज़ादिए-जम्हूर) की विशेषताओं एवं ख़ूबियोका वर्णन किया जायगा, किन्तु दूसरे मिसरेमे स्पष्टरूपसे बुराई की गयी है। अत संशोधन इसी असमानता-

---

१. जन्नतकी लालसामें। २. भोगविलास, आनन्द। ३. रोते हुए, अश्रुपूर्ण नेत्र लिये हुए। ४. श्री बलवन्तकुमार अग्रवाल 'सागर' नकोदरी। ५. प्रजातन्त्रीय स्वराज्यका दृश्य। ६. दुर्दशाग्रस्त।

को ठीक करनेके लिए किया गया। पहले मिसरेमें 'अल्लाहरे' के वजाय केवल 'कैफ़ीयते' वना देनेसे बुराईका भाव पैदा हो गया।

सागर—तड़पना, तिलमलाना, लोटना रुख़सत हुए अक्सर
अजल[1] तेरे मरीज़े-ग़मको पैग़ामे-शिफा[2] निकली

जोश—....... . ... जाता रहा ....
मरीज़े- ' ....ग़मके हक़में मौत.........................

पहले मिसरेमे क्रिया एकवचन ही लालित्यपूर्ण एव उचित होती। दूसरे मिसरेमे—"मरीजे-गमको पैगामे-शिफा निकली" ये शब्द भी वोलचालके खिलाफ थे। इन्ही दो त्रुटियोको शुद्ध करनेके लिए संशोधन किया गया।

सागर—न हुस्नो-इश्कका हो जिसमें कोई ज़िक्र ऐ 'साग़र'!
वो किस्सा, वो कहानी, वो हिकायत कुछ नहीं होती
जोश—न हो जिसमें कोई मज़कूरे-हुस्नो इश्क[3] ऐ 'साग़र'!
....

पहले मिसरेमे 'न' और 'हो' का एक साथ आना लाज़िम था। इन शब्दोका जिस प्रकार इस्तेमाल किया गया है, वह अर्थहीन (मुहमिल) है। सशोधन-द्वारा यह दोष दूर हो गया है।

साग़र—देखा है तेरे कूचेमें नज्ज़ारए-जन्नत[4]
जन्नतमें न देखा तेरे कूचेका नज़ारा[5]
जोश—देखा तेरे कूचेमें तो...... ....
....

१. मृत्यु। २. आरोग्यताका सन्देश। ३ सौन्दर्य्य एवं प्रेमका वर्णन। ४. जन्नतका दृश्य। ५. दृश्य।

प्रथम मिसरेमे 'है' अनावश्यक था। संशोधनमे 'है' निकालकर यथा-स्थान 'तो' का इजाफा किया गया।

शाइक[1]—मैकश[2] जो थे वह जामो-सुबू[3] कर गये तही[4]
डूबे जनाब शैख अज़ाबो-सवाबमें[5]
जोश—मैकश तो ले-के किश्तिए-मै पार हो गये
....

डूबनेके लिहाज़से पार हो जानेका मजमून ही मुनासिब था। 'खाली कर गये' की जगह भी 'तही कर गये' कहा था। यह दोष भी संशोधनसे जाता रहा। 'किश्तिए-मै' पार हो जानेके लिए बहुत ही उचित संशोधन है।

शाइक—मुसीबत आ पड़ी उस पर कि आदत है कोई उसकी
उड़ी जाती है क्यों पूछो ज़रा उम्रे-गुरेज़ाँसे[6]
जोश—...
.........................पूछे कोई.........................

'कौन पूछे' इसका कोई पता दूसरे मिसरेमें नही है। 'पूछे कोई' यह शब्द यहाँ वहुत उपयुक्त एवं सार्थक है।

शाइक—जानकर तुमने किया हमसे गुरेज़[7]
हमसे नादानीमें उल्फ़त हो गयी
जोश—तुमने दानिस्ता किया' ....
....

जान-बूझकरकी जगह सिर्फ 'जानकर' कहना काफी न था। यहाँ दानिस्त. कहना बहुत ज़रूरी था।

---

१. श्री लक्ष्मीदास 'शाइक़' अमृतसरी। २. सुरासेवी। ३. मदिरापात्र। ४. रिक्त। ५. पाप-पुण्यमें। ६. मदिरारूपी नौका। ६. बीती हुई उम्रसे। ७. उपेक्षा, नफ़रत।

क़मर[1]—मुसलसल[2] जो सहे चोटें जफ़ाकी
वह दिल अव वह जिगर लाऊँ कहाँसे ?
जोश—... ....
वह दिल वह हौसला ....

दूसरे मिसरेमे 'अव' की आवश्यकता न थी। उसको निकालनेके लिए सशोधन किया गया।

क़मर—खुशा[3] जज़्वे-मुहव्वत[4] रंग लाया
हम उसके वो हमारा हो गया है
जोश—खुशा क़िस्मत, खुशा जज्वे-मुहव्वत
. ...

पहले मिसरेमे 'खुशा' की शक्ल महल्लेनजर (शक या एतराजकी जगह) थी। इसे ज़ोफे-तालीफ (शाइराना दुर्वलता) भी कह सकते हैं। इस लफ्ज (खुशा) को सही शक्लमे इस्तेमाल करनेके लिए परिवर्त्तन किया गया। अव पहले मिसरेमे ज़ोर भी पैदा हो गया। ख़ुशाके वाद ऐसा लफ्ज जरूर आना चाहिए जिसकी अजमत (इज्जत) को वयान करना मक्सूद हो। रग लाया शव्दने 'ख़ुशा' को विलकुल अलग-थलग करके 'जज्वे-मुहव्वत' को अपने साथ कर लिया था।

कमर—मुहव्वतमें हुआ दिल टुकड़े-टुकड़े
जिगर भी पारा-पारा हो गया है
जोश—फकत दिल ही नहीं है टुकड़े-टुकड़े
... .

---

१. श्री वलराज भारद्वाज 'क़मर', गान्धी कॉलेज अम्वाला। २. लगातार। ३. अहोभाग्य। ४. प्रेमाकर्षण।

दूसरे मिसरे का 'भी' इच्छुक था कि पहले मिसरेके 'दिल' पर बात समाप्त न करके उसके साथ सम्बन्ध रखा जाये। संशोधनसे दोनो मिसरे एक सूत्रमें बँध गये।

कमर—उनसे उम्मीदे-करम[1] होगी तो क्यों कर होगी !
उनको आती है तो इक फ़ित्नागरी[2] आती है

जोश—... ....होती तो क्योंकर होती
जिनको ले-देके फ़क़त .. ..

पहला मिसरा सन्देहास्पद था। इस्लाहसे विश्वासकी सूरत पैदा कर दी गयी। 'उनको' 'उनसे' एक ही प्रकारके शब्द दो बार अनावश्यक प्रयुक्त हुए थे। इस्लाहसे दोनों मिसरोमे क्रमबद्धता आ गयी। 'इक' की जगह फकत' ज्यादा मौजूँ है और 'ले-देके' शब्दोंने शेरको चार चाँद लगा दिये हैं।

कमर—आलमे-कैफ़-सा[3] हो जाता है तारी[4] मुझपर
दिल मचल जाता है जब याद तेरी आती है

जोश—... ....
बैठे-बैठे जो मुझे याद ....

'बैठे-बैठे' शब्द यारके लिए बहुत ही उपयुक्त है। इस परिवर्त्तनने दूसरे मिसरेके 'दिल मचल जाता है जब' शब्द अनावश्यक कर दिये। दूसरे मिसरेमे दिलका मचल जाना एक ऐसी बात थी; जिसे 'आलमे-कैफसे' कोई सम्बन्ध न था।

---

१. कृपापूर्ण व्यवहारकी आशा। २. उपद्रव करना-कराना। ३. नशेकी हालत। ४. छा जाती है।

मजाज़[1]—ख़ारे-हसरतकी ख़लिशमें[2] लज्ज़तें थीं किस क़दर
मैं ही खुद काँफाटे-व की राहमें बोता रहा
जोश—ख़ारे-हसरतकी ख़लिशपर क्यों तुझे इल्ज़ाम दूँ ?
....

वयानमे रब्ते-उस्तुवार (स्थायी बन्धन) न था। पहले मिसरेके संशोधनसे यह कमी पूरी हो गयी। अव दोनो मिसरोमे अलगाव नही रहा।

मजाज़—तू ही कुछ कद्रदाँ नहीं वर्ना—
जौहरे-इन्तखाब हैं हम लोग
जोश—........ ....
इश्कमें इन्तख़ाब .. ..

'जौहरे-इन्तखाव' की तरकीव नामानूस (अपरिचित) थी उसे निकाल दिया गया।

मजाज़—वे-खुदीए-शौक़[3] बरहमे-हस्ती[4] है
किसीने छेड़ा है मेरे दिलका साज़
जोश—वे-खुदी आज सब पै तारी[5] है
....

'वेखुदीए-शौक' की यह तरकीब नामानूस भी थी और स्पष्ट भी न थी, उसे खारिज कर दिया गया।

---

१. श्री नवल किशोर जैन 'मजाज़' चन्दौसवी। २. अभिलाषारूपी काँटोंकी चुभनमें। ३. शौककी आत्मलीनता। ४. जीवनकी अव्यवस्था। ५. छायी हुई।

मजाज़—रहे-तलबमें[1] कुछ ऐसे मक़ाम भी आये
तेरे बग़ैर भी दिल मुतमइन[2] रहा ऐ दोस्त!
जोश— ....
....रहा मेरा

'ऐ दोस्त' यहाँ कुछ जरूरी न था। इस प्रकारका सम्बोधन वर्त्तमानके नवयुवकोंकी देन है। 'तेरे बगैर भी' यही शब्द यहाँ काफी थे।

शहीद[3]—यह बदज़ौक़ी[4] नहीं तो और क्या है चश्मे-बुलबुलसे
टपकता है जो आँसू, क़तरए-शबनम[5] समझते हैं
जोश—असर अहले चमनपर हो तो क्या हो अश्के-बुलबुलका[6]
... ...

दूसरे मिसरेमे कर्ताका पता नही चलता। चश्मे-बुलबुलसे जो आँसू टपकता है, उस वाक्यका आधा हिस्सा पहले मिसरेमे रह गया, शेष दूसरे मिसरेमे। शेरकी यह बन्दिश अनुचित थी। संशोधनसे ये दोष दूर हो गये।

शहीद—ढूँढ़ता हूँ पर इलाजे-दर्दे-दिल मिलता नहीं
गो बहार आयी मगर दिलका कँवल खिलता नहीं
जोश—ढूँढ़नेपर भी ... .
....

---

१. अभिलाषाओंके मार्गमें। २. आश्वस्त। ३. श्री मनोहरलाल 'शहीद' अलीपुरी हाल मक़ाम सोनीपत। ४. कुरुचि। ५. ओसकी बूँदें। ६. बुलबुलके आँसुओंका।

'लेकिन' के अर्थमे 'पर' का प्रयोग अव वर्जित है। उसे खारिज करनेके लिए इस्लाह की गयी। संशोधनसे मिसरा अधिक प्रभावक वन गया।

आविद[1]—शौके-मंज़िल[2] तूने यह क्या कर दिया
ज़िन्दगी गर्दे-सफ़र[3] होकर रही
जोश—... .. .. इस कदर था तेज़ गाम[4]
....

'गर्दे-सफर' हो जानेका सवूत तेज़गामी ही से हो सकता है। इसके वगैर पहले मिसरेके लफ्ज इस नतीजेको स्पष्ट नही कर सकते। 'इस कदर' के इज़ाफेसे मिसरेमे ज़ोर आ गया।

आविद—जो ज़माने भरका ग़म खाता नहीं
वह बशर[5] इंसान कहलाता नहीं
जोश—जो किसी बेकसका[6] ....
....

ज़माने-भरका गम खाना भी इंसानियत है। सारी दुनियाका चक्कर काटनेके वजाय जव नज़दीक और सामनेके केवल एक लफ्ज़से काम चल जाये तव दूर जानेकी ज़रूरत नही।

आविद—गर पिरोते न ग़मके धागेमें
दिलके टुकड़े बिखर गये होते
जोश—न पिरोते जो रिश्तए-ग़ममें
....

---

१. श्री गौरीशकर 'आविद' मनांदरी, हाल मुक़ाम जम्बू। २. भ्रमणका शौक़। ३. मार्गकी धूल। ४. शीघ्रगामी। ५. मनुष्य। ६. लाचारका।

'गर' मतरूक (उर्दूमे व्यवहृत नही होता) है, धागा भी गजलकी ज़बान नही। इसकी जगह 'रिश्तए-गम' कहनेमे अधिक सौन्दर्य है।

आबिद—वह सूरत ही नज़र आती नहीं अब
लबोंपर[1] मुद्दआ[2] है और मैं हूँ

जोश—..............................
निगाहे-नारसा[3] है....................

दूसरा मिसरा पहले मिसरेसे सम्बन्धित न था। यह ख़राबी 'निगाहे-नारसा' कहनेसे दूर हो गयी।

साधू[4]—है आ.ज़ूए-दीद[5] फनापर[6] भी ऐ सबा!
ले चल उड़ाके ख़ाक मेरी कूए-यारमें[7]

जोश—मुश्ताके-दीद[8] बादे-फ़ना[9] भी हूँ ऐ सबा[10]!
....

पहला मिसरा अस्पष्ट था। 'बादे-फना' से स्पष्ट हो गया। 'फनापर'-की जगह 'बादे-फना' बनानेसे मिसरेका सौन्दर्य बढ़ गया।

साधू—ऐ दिल! न छेड़ क़िस्सए-फ़सूँदा इश्कका[11]
क्यों रो रहा है फ़ुर्कते-लफ़्ज़ी निगारमें[12]

जोश—..............................
उलझा न अहले-बज़्मको इस ख़ारज़ारमें[13]

'लफ्ज़ी निगार' का कुछ अर्थ नही। यह अर्थहीन शब्द निकालनेके लिए मिसरेका काफिया भी बदलना पडा।

---

१ ओठोंपर। २. अभिप्राय, मतलबकी बात। ३. न देख सकने योग्य दृष्टि। ४. सरदार साधू सिंह 'साधू' फरीदकोटी। ५. देखनेकी लालसा। ६. मरनेपर भी। ७. प्रियतमाके मुहल्लेमें। ८. देखनेका अभिलाषी। ९. मरनेके बाद। १०. वायु। ११. विस्मृत प्रेमका क़िस्सा। १२. विरह-व्यथामें। १३. कंटकाकीर्णमें।

रतन[1]—कौन-सा यह मुकाम आ गया
दुश्मनी हो गयी राहबरसे[2]

जोश— . . ..
बदगुमानी-सी[3] है .. ... .

राहबरसे दुश्मनीकी सम्भावना वहुत कम होती है। हाँ उसके रग-ढंगसे उसके बारेमे गलतफहमी या विपरीत धारणा (वद गुमानी) वन जाती है।

रतन—इक ख़ास मक़ाम है नज़र में
अब शोरिशे-कुफ़्रो-दीं[4] नहीं है

जोश—किस खास मक़ामपर मै पहुँचा ?
. .. .

दोनो मिसरोमे समानता लानेको संशोधन किया गया है। प्रश्न-वाचक लहजा जो आश्चर्यजनक भी है—'किस खास मकामपर मैं पहुँचा।' इस्लाहने शेरमे जान डाल दी।

.फ़ुग़ाँ[5]—क्यों भला जायें दश्ते-ईमनमें[6]
अपना मस्कन[7] है अपने गुलशनमें

जोश—किस लिए.... ....
....

---

१. पण्डित वलराम 'रतन' पिण्डूरवी हाल मुक़ीम हरगोविन्दपुर। २ पथ-प्रदर्शकसे। ३ कुधारणा। ४. धर्म-अधर्मका जजाल। ५. फ़ुग़ाँ सूरती (झाँपा वाज़ार सूरत)। ६. अरवका एक देश जहाँका याकूत और लाल सारे संसारसे अच्छा होता है। ७ देश, स्थान।

'भला' बेज़रूरत और काबिले-तर्क है। यह शब्द अब अच्छाके अर्थमें प्रयुक्त होता है। जैसे—

तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ 'ज़ौक़'!

फ़ुग़ाँ—बारहा[1] ग़मकी मौजोंसे गुज़री मगर
डगमगायी न यह किश्तिए-ज़िन्दगी

जोश— ....
डगमगायी नहीं ....

दूसरे मिसरेमे 'यह' शब्द ज्यादा और बेकार था। 'डगमगायी न' की जगह भी यहाँ 'डगमगायी नही' ज्यादा मुनासिब और सौम्य है।

फ़ुग़ाँ—हो गये हमकनार[2] मंज़िलसे
डाल दी ख़ाक चश्मे-रहज़नमें[3]

जोश—अपनी मंज़िलको हमने जा ही लिया
झोंककर............ . .. .

शेरमे कर्त्ताका पता न था। 'डाल दी' की जगह 'झोंककर' परिवर्त्तन बहुत उचित एवं प्रिय है।

राज़[4]—हमारे आशियाँसे आस्माँ तक रोक ही क्या थी
बलाए-चर्ख़से[5] महफ़ूज़[6] क्योंकर आशियाँ करते?

जोश—रुकावट कौन-सी थी चर्ख़से[7] शाख़े-नशेमन तक
....

१. अनेक वार। २. मंजिल तक पहुँचना। ३. मार्गके लुटेरोंकी आँखोंमें। ४. 'राज़' अहसनी, सहसवान जिला—बदायूँ। ५. बिजलीके कोपसे। ६. सुरक्षित। ७. आकाशसे।

'आशियाँ' शेरमे दो बार आया है। साथ ही बिजलीके गिरनेसे पूर्व उसकी रवानगीका मकाम पहले और मंजिलपर पहुँचकर गिरनेका स्थान बादमे होना चाहिए था। संशोधनसे ये दोनो दोष दूर हो गये।

राज़—उनसे उम्मीदे-करम[1] थी 'राज़' मुझको इश्क़में
यह खयाले-खाम[2] और कितना ख़याले-खाम था

जोश—· ····· ···· ······· ····· ···· · ····
अब हुआ मालूम यह कितना········ ········ ···

इस्लाहका आशय स्पष्ट है।

राज़—वादिए-इश्कमे[3] दिल डूब रहा है अपना
ग़र्क होता है बयाबाँमें सफीना[4] कैसा

जोश—··· ···· · ···· ··· · ················या रब !
· ··· ··· ··· ······ ·· ······ · · ·· · ···

'अपना' और 'कैसा' दोनों शब्दोमे समान काफियोका भ्रम होता है। हजरत 'जोश' इस विचारके पाबन्द है कि पहला मिसरा ऐसे लफ़्ज-पर खत्म न किया जाये जो रदीफके साथ हम काफिदा हो।

राज़—वे क्या नक़ाबको रुखसे[5] वहाँ उलट देंगे
कयामत आये तो आया करे हमें क्या है

जोश—········ ··································· ····· ····
खुदाके सामने जानेसे फायदा क्या है।

'हमे क्या'के बाद 'है' व्यर्थ था।

---

१. कृपाकी आशा। २. व्यर्थ विचार। ३. प्रेमकी घाटीमें। ४. नौका। ५. मुखसे।

राज़—ख़ुदाके वास्ते ढूँढ़ो यहीं कहीं होगा
दिले-ग़रीब सरे-बज़्म[1] अभी तो खोया है

जोश—...
दिले-हज़ीं[2] सरे महफ़िल...............

'ग़रीब' बेचारेके अर्थमें इज़ाफ़तमें नही आ सकता।

बिस्मिल[3]—कोई बिजली न आयेगी चमनमें
यह फ़ित्ने थे हमारे आशियाँ तक

जोश—चमनसे बिजलियोंको अब ग़रज़ क्या!
....

पहला मिसरा 'अब' लफ्ज़का मुहताज था। साथ ही इसी मिसरेमे 'बिजली' एकवचन और दूसरे मिसरेमे 'फ़ित्ने' बहुवचन था। संशोधनसे यह दोनो दोष भी जाते रहे और शेर अधिक जानदार बन गया।

बिस्मिल—मेरे क़ाबूमें अगर आज मेरा दिल होता
इतना रुसवा[4] न कभी मैं सरे-महफ़िल होता

जोश—..............................दर्द भरा दिल होता
....

पहले मिसरेमें 'आज' अनावश्यक था। काबूके लिए दिलके बेकाबू हो जानेकी कोई सिफ्त काबिले-ज़िक्र थी।

बिस्मिल—ख़ुदा करे कि न टूटे तिलस्मे-ज़ौक़े-नज़र[5]
ख़िरद[6] जूनूँ[7] पै कहीं छा गयी तो क्या होगा

जोश—...
जूनूँ पै अक्ल अगर छा गयी ....

१. महफिलमें। २. पीड़ित हृदय। ३. श्री गुरुदयाल साहब 'बिस्मिल' कपूरथलवी। ४. बदनाम। ५. देखनेकी लालसाका भ्रम। ६ अक़्ल। ७ दीवानगीपर।

दूसरे मिसरेमे 'खिरद' की क्रिया उससे काफी दूर थी। सशोधनसे यह त्रुटि ठीक हो गयी।

बिस्मिल—आरजूएँ[1] एक ही मरकज़ पै[2] आकर मिट गयीं
मै जिसे आगाज़[3] समझा था वही अंजाम[4] है

जोश— .. .. पै रहकर मिट गयीं
....

संशोधनका आशय स्पष्ट है।

बिस्मिल—जो ज़िद है बर्के-तपाँको[5] तो फिर यह ज़िद ही सही
हम आज अपना नशेमन[6] बनाके देखेगे

जोश—जो ज़िद है बर्के-चमन सोज़को तो ज़िद ही सही
... ...

मिसरा अव्वलमे 'यह' अनावश्यक है। साथ ही शेरके आशयको स्पष्ट करनेके लिए बर्ककी सिफ्त 'तपाँ' काफी नही है। उसकी जगह 'चमन सोज़' कहनेसे भाव अधिक उजागर हो गया।

बिस्मिल—यक़ी है मंज़िले-मक़सूद[7] खुद क़दमोंमें आयेगी
मगर क्या हर्ज है मै एहतियाते-जुस्तजू[8] कर लूँ

जोश—यक़ीं तो है कि मंज़िल खुद मेरे .. ..
....

'यकी' के बाद 'तो' लानेसे मिसरेमे भी ज़ोर पैदा हो गया और दूसरे मिसरेसे सम्बन्ध भी दृढ हो गया।

●

---

१ इच्छाएँ। २. केन्द्रपर। ३. प्रारम्भ, शुरूआत। ४. अन्त, परिणाम। ५. उत्तप्त उल्काको, क्रुद्ध बिजलीको। ६. नीड। ७. अभिलषित, लक्ष्यस्थान। ८. पुरुषार्थ, खोजका प्रयास।

अनेक उस्तादों-द्वारा इस्लाहें

अब हम चमने-शाइरीका ऐसा गुलदस्ता भेट कर रहे है, जिसे एक ही बागवाँने बनाकर अपनी विचित्र सूझ-बूझका परिचय दिया है। हज़रत शौक सन्देलवी अपनी हर-एक गज़लपर वर्त्तमानयुगीन ख्याति-प्राप्त ४२ उस्तादोसे इस्लाह लेते रहे। प्रत्येक उस्ताद उन्हे अपना ही शिष्य समझता रहा, और हजरत शौक सन्देलवी भी पत्र-व्यवहार-द्वारा इस्लाह लेते रहे और हर उस्तादपर यही जाहिर करते रहे कि वे उन्हीके शिष्य है। उस्तादोंकी फर्माइशे पूरी करते रहे। जाइज़-नाजाइज आदेशोका पालन करते रहे। इन इस्लाहोके अवलोकनसे मालूम होगा कि प्रत्येक उस्तादका इस्लाह देनेका अपना-अपना जुदा ढंग है। कुछ उस्तादोने जिन अशआ़रको कलमज़द कर (ग़जलसे निकाल) दिया है। उन्ही अशआ़रको कुछ उस्तादोने कई-कई स्वाद (Right) देकर शौक साहबकी सराहना की है। जिस शब्दको कुछ उस्तादोंने मतरूक (अव्यवहृत, अप्रचलित) या गलत कहा, उसी शब्दकी अन्य उस्तादोने दाद दी है। शौक साहब १९१७ सन्‌से १९२३ तक इस्लाह क्या लेते रहे, उस्तादोका चुपचाप इम्तहान लेते रहे है और तारीफ़ यह है कि किसी भी उस्तादको उनके इस कौशलका आभास तक न हुआ। इसी तरहकी सोलह गज़लोका इस्लाहशुदा संकलन 'इस्लाहे-सुख़न' शीर्षकसे सन् १९२६ ई० मे शौक साहबने प्रकाशित कराया था। जिसका क्रम निम्न प्रकार है—

१—पहले अपनी पूरी गजल दी है।

२—फिर अपनी उसी गजलका एक शेर मोटे अक्षरोमे दिया है।

३—उस शेरके नीचे प्रत्येक उस्तादका नाम हाशिएपर और

उनकी इस्लाह नामके आगे दर्ज है। और जिस मिसरेपर इस्लाह नही दी है, उस मिसरेके नीचेका स्थान खाली छोड दिया है।

४—इस्लाहके साथ जिस किसी उस्तादने कोई रिमार्क दिया है वह भी नामके आगे दे दिया है। अन्तमे जिन उस्तादोने जिस शेरको इस्लाहसे मुक्त समझा है उनके नाम शेरके अन्तमे दे दिये हैं।

हमने भी यही क्रम अपनाया है। शौक साहबकी सोलह गजलोमे-से नमूनेके तौरपर केवल यहाँ एक गजल दी जा रही है। 'शौक' साहबकी पूरी गज़ल देनेके बाद उनके प्रत्येक हाशियेपर 'सन्देलवी' दिया है। क्योकि उन्होने अपने हमनाम उस्ताद 'शौक'की भी इस्लाहे दर्ज की है। नामोकी वजहसे गलतफहमी न हो, इसलिए 'शौक' साहबके उन शेरोपर जिनपर उस्तादोने इस्लाहे दी है। केवल 'सन्देलवी' दिया गया है।

ग़ज़ल

दुश्मने-जाँ जबसे यह चर्खे-सितमगर हो गया
कौन-सा बाक़ी सितम है, जो न हमपर हो गया
ख़त्म आज अफसानए-तर्के-सितमगर हो गया
सख्त जाँ में ज़िबह टुकड़े-टुकड़े ख़ंजर हो गया
किश्तिए-नाज़े-तग़ाफुलका है अब क्या पूछना
ज़िन्दए-जावेद तेरी ख़ाके-ठोकर हो गया
वाए-क़िस्मत पहुँचे है कब हमसे नाकामे-अजल
ख़त्म जब महफ़िलमें दौरे-जामो-साग़र हो गया
इक निगाहे-याससे क़ातिलके तेवर बुझ गये
एक छींटेसे लहूके कुन्द ख़ंजर हो गया
देख ज़ालिम तेरे फरियादोंने वक़्ते-बाज़पुर्स
वह हवा बाँधी कि सम मैदाने-महशर हो गया
आह ज़ालिम हो चुकी इक मुन्तज़रकी आँख बन्द
अब तेरा आना न आना सब बराबर हो गया
ज़ाहिदे-बदबीकी उफ तर्सी निगाहोंका असर
शीशा चटका बीचसे सौ टुकड़े साग़र हो गया
ख़ाक़ उड़ायी तेरे दीवानेने ऐसी रोज़े-हश्र
गर्द जिसके सामने आशोबे-महशर हो गया
टुकड़े दिल करता हुआ झोंका नसीमे-सुबहका
बुलबुले-नादाँके हकमें तेज़ ख़ंजर हो गया
ऐ सरे-शोरीदा थोड़ी और हिम्मत चाहिए
शक़ हुई दीवारे-ज़िन्दाँमें नया दर हो गया

साथ देता जा ज़रा ऐ ज़ब्त ! थोड़ी देर और
दम उधर निकला कि मैदाने-वफ़ा सर हो गया
अब कहाँ है वह जवानीका तिलिस्मे-दिलफरेब
इक तमाशा था कि जो ऐ 'शौक़' ! शब भर हो गया

० ० ०

सन्देलवी—दुश्मने-जाँ[१] जबसे यह चर्खे-सितमगर[२] हो गया
कौन-सा बाक़ी सितम[३] है, जो न हमपर हो गया

अहसन—जबसे दुश्मन जानका चर्खे-सितमगर हो गया
क्या सितम बाकी रहा है जो न हमपर हो गया

आरज़ू—महर्बां जिस दिनसे इक तर्के-सितमगर[४] हो गया
कौन-सा ऐसा सितम था जो न हमपर हो गया

अतहर—...... ....
जो न होना था सितम अब वह भी हमपर हो गया

बज़्म—...... .. ..
कौन-सा ऐसा सितम है जो न हमपर हो गया

बेख़ुद देहल्वी— ....
कौन-सा ऐसा सितम है जो न हमपर हो गया

बेख़ुद मोहानी—दुश्मन अपना जबसे यह चर्खे-सितमगर हो गया
कौन-सा ऐसा सितम है जो न हमपर हो गया

---

१. जानी दुश्मन, प्राणोंका शत्रु। २. अत्याचारी आकाश। ३. अत्याचार, ज़ुल्म। ४. अत्याचारत्यागी।

जलील—……………… . .. . …. ……………… …
कौन-सा ऐसा सितम है जो न हमपर हो गया

रियाज़—दुश्मने-जाँ लेके दिल तर्के-सितमगर हो गया
हो गया जो ज़ुल्म होना था वह हमपर हो गया

शाद—ऐ फ़लक[1]! क्यों इस तरहका तू सितमगर हो गया
सच बता वह ज़ुल्म क्या था जो न हमपर हो गया

शफ़क़—['यह' का लफ्ज बे-जरूरत था, दूसरे मिसरेमे जो तसर्रुफ (परिवर्त्तन) किया गया, उसने मतलेको और चमका दिया। सितम कहनेकी जरूरत न रही सब कुछ इशारेमें अदा हो गया—शफक।]

शफ़क़—दुश्मने-जाँ जबसे चर्ख़े-कीना पर्वर[2] हो गया
क्या बतायें जो न होना था वह हमपर हो गया

शौक़—[बहुत मामूली शेर है और जज्बाते-इन्सानीसे[3] ख़ाली है। कलमजद (अत शेर काट दिया है)।]

सफ़ी—तेरे हाथों ज़ुल्म क्या-क्या जो सितमगर हो गया
जो न होना था वह सब कुछ आज मुझपर हो गया

अज़ीज़—दुश्मने-जाँ जबसे तू चर्ख़े-सितमगर हो गया
कौन-सा ज़ुल्मो-सितम है जो न हमपर हो गया

मुज़तर—…………… . ……… . ………
कौन-सा ऐसा सितम है जो न हमपर हो गया

नूह नारवी—……………… ……………
क्या बतायें जो न होना था वह हमपर हो गया

१. आस्मान। २. हृदयमें द्वेष रखनेवाला। ३. मानवताके भावोंसे।

वहशत कलकतवी—जबसे दुश्मन जानका चर्ख़े-सितमगर हो गया
ज़ुल्म हमपर जो न होना था वह हमपर हो गया
दुश्मने जाँ जबसे वह शोखे-सितमगर[1] हो गया
....

[जिगर, वाकी, दिल, फानी, साइल आदि शाइरोने उक्त मिसरेमे 'यह' की एवज 'वह' बनाकर शेरपर स्वाद[2] दिया है।]

० ० ०

सन्देलवी—खत्म आज अफसानए-तर्के-सितम[3]गर हो गया
सख्त[4] जाँ मैं ज़िबह[5] टुकड़े-टुकड़े खंजर हो गया

हसन—खत्म तूमारे-सितमगर[6]-ओ-सितमगर हो गया
सख्त जाँ काम आ गया बेकार ख़ंजर हो गया

आरज़ू—खत्म आज अफसानए-जौरे-सितम[7]गर हो गया
होके बेदम खुद ज़बाने-हाले-ख़ंजर हो गया

अतहर—खत्म आज अफसानए-जौरे सितमगर हो गया
ज़िबह बिस्मिल[8] हो गया बेकार ख़ंजर हो गया

बाकी—क्या सितम है मेरे कातिलको कहीं खिफ्फत[9] न हो
सख्त जानी! देख टुकड़े-टुकड़े ख़ंजर हो गया

बज़्म—खत्म आज अफसानए-दस्ते-सितमगर हो गया
. ...

१. अत्याचार ढानेवाला चुलबुला माशूक। २. शुद्ध, सहीका चिह्न। ३. सितम ढानेवाले माशूकका किस्सा। ४. कठिनतासे जिसके प्राण निकलें। ५. कत्ल किया गया। ६. बहुत अधिक अत्याचार सहनेवाला आशक। ७. अत्याचारीकी अनीतिका क़िस्सा। ८. अर्द्धमृतक, घायल। ९. बदनामी, नदामत।

बेखु.द देहल्वी—[कलम[1] ज़द]

बेखु.द मोहानी—हो गया ख़त्म आज यूँ अफ़सानए नाज़ो-नियाज़[2]
पुर्ज़े-पुर्ज़े मैं तो टुकड़े-टुकड़े खंजर हो गया

जिगर—ख़त्म आज अफ़सानए-ज़ुल्मे सितमगर हो गया
....

दिल— ....
यूँ लगा काँटा कि टुकड़े-टुकड़े खंजर हो गया

रियाज़ — मेरे पहलू में दर[3] आते ही यह क्या आलम[4] हुआ
टुकड़े-टुकड़े मेरे दिलकी तरह खंजर हो गया

शाइल—ख़त्म यूँ अफ़सानए-सईए-सितमगर[5] हो गया
... .

शफ़क़ —[यह मतला कई वजहसे ठीक नही, बन्दिश खराब है। दूसरे मिसरेमें 'जिबह' का लफ्ज़ 'मैं' के वाद फिर 'टुकडे-टुकड़े' अजब तरहका है, ज्यादा तसर्रुफ़[6] की जरूरत थी, इसलिए कलमज़द[7] किया गया—शफक]

शौक़—[यह भी कुछ नही है कलमज़द—शौक]

शौक़—तू है मुन्किर[8] क़त्लसे तो क्या मैं यह सबसे कहूँ ?
खु.द ब-खु.द दामन किसीका .खूनसे तर हो गया

सफ़ी— ....
ज़िबह करके मुझको टुकड़े-टुकड़े खंजर हो गया

---

१. व्यर्थ समझकर शेर काट दिया, रद्द कर दिया। २. मान-मनव्वलकी कहानी। ३. घुसते। ४. हाल। ५. अत्याचारीके प्रयासका क़िस्सा। ६. परिवर्त्तन-परिवर्द्धनकी। ७. रद्द। ८. इन्कारी।

गु.रेज़—[कलमज़द]

फ़ानी—[कलमजद]

मुज़्तर—ख़त्म आज अफसानए-जौरे-सितमगर हो गया
सख़्त जॉपर चलके टुकड़े-टुकड़े ख़ंजर हो गया

नूह—[फसानेके होते हुए अफसाना काबिले-तर्क है]
खत्म अब यूँ किस्सए-इश्क़े-सितमगर हो गया
....

वहशत—खेल ऐ कातिल ! न था मुझ सख़्त जॉका क़त्ल कुछ
मुफ्त इस ज़हमतमें[1] टुकड़े-टुकड़े खंजर हो गया

[शाद और जलीलने उक्त शेर शुद्ध समझकर कोई इस्लाह नही दी।]

०००

सन्देलवी—कुश्तए-नाज़ो-तग़ाफ़ुल[2] का है अब क्या पूछना
ज़िन्दए-जावेद[3] तेरी खाके ठोकर हो गया

अहसन—कुश्तए-ना.ज़ुक तग़ाफ़ुल भी है क्या बेदार बख़्त[4]
ज़िन्दए-जावेद खाकर तेरी ठोकर हो गया

आरज़ू—कुश्तए-तेग़े-तबस्सुम[5] नाउम्मीदे-ज़िन्दगी
ज़िन्दए-जावेद खाकर एक ठोकर हो गया

अतहर—.... ... .
ज़िन्दए-जावेद खाके तेरी ठोकर हो गया

---

१. परेशानीमें। २. उपेक्षापूर्ण हावभावों-द्वारा मिटा हुआ प्रेमी, बेपर्वाह नाज़नखरोंसे घायल आशिक़। ३. अमर। ४. भाग्य जगानेवाला। ५. मुस्कानरूपी तलवारसे घायल।

बाक़ी—और ठुकराएँ शहीदे-नाज़को अपने हु.ज़ूर
ज़िन्दए-जावेद खाकर एक ठोकर हो गया

[पहले मिसरेमें 'और' का लुत्फ़ काबिले मुलाहिज़ा है—बाकी]

बे.ख़ुद देहल्वी—..
ज़िन्दए-जावेद खाकर तेरी ठोकर हो गया

बे.ख़ुद मोहानी—अल्लाह-अल्लाह कुश्तए तेग़े-तग़ाफ़ुलके नसीब[1]
ज़िन्दए-जावेद खाकर एक ठोकर हो गया

जिगर—..
ज़िन्दए-जावेद खाकर तेरी ठोकर हो गया

जलील—कुश्तए-तेग़े-तग़ाफ़ुलका है अब क्या पूछना
....

दिल—ख़स्तए[2]-तर्जे-तग़ाफ़ुलका है अब क्या पूछना
ज़िन्दए-जावेद गोया खाके ठोकर हो गया

रियाज़—कुश्तए-नाज़ो-तग़ाफ़ुलका तेरे क्या पूछना
ज़िन्दए-जावेद खाकर तेरी ठोकर हो गया

शाद—कुश्तए-नाज़ो-तग़ाफ़ुलकी है क़िस्मत जाये-रश्क़[3]
....

शफ़क़—[ताकीद फ़ाश[4] है। तेरी ठोकर खाके जिन्दए-जावेद हो गया—शफक]

---

१. भाग्य। २. उपेक्षाके रंग-ढंगसे ख़स्ताहाल। ३. ईर्ष्या योग्य। ४. लज्जा-जनक, समझमें न आनेवाला वाक्य।

शफ़क़—फ़ित्नए-दौराँ[1] कि जो मुद्दतसे था सोया हुआ
इक क़यामत वह भी खाकर तेरी ठोकर हो गया

शौक़—[ताकीदसे ऐब बुरा है—शौक]

शौक़—ख़ूब चमका कुश्तए तेग़े-तग़ाफ़ुलका नसीब
ज़िन्दए-जावेद खाकर तेरी ठोकर हो गया

सफ़ी—कुश्तए-नाज़ो-तग़ाफ़ुलका भला क्या पूछना
ज़िन्दए-जावेद खाकर एक ठोकर हो गया

गु.रेज़—कुश्तिए-तर्ज़े-ख़िरामे यारका[2] क्या पूछना
ज़िन्दए-जावेद खाकर एक ठोकर हो गया

फ़ानी—...... .. ..
ज़िन्दए-जावेद खाकर तेरी ठोकर हो गया

नूह—कुश्तए-तर्ज़े-तग़ाफ़ुलका है अब क्या पूछना
ज़िन्दए-जावेद खाकर तेरी ठोकर हो गया

मुज़तर—............. ....
ज़िन्दए-जावेद गोया खाके ठोकर हो गया

वहशत—कुश्तए-जौरे-तग़ाफ़ुलका है अब क्या पूछना
....

[वज्म, साइलने संशोधन-रहित समझकर स्वाद लगाया]

○ ○ ○

---

१. संसारका उपद्रव, नटखट। २. माशूक़की अलबेली चालका मारा हुआ।

सन्देलवी—वाये-क़िस्मत[1] पहुँचे हैं कब हम-से नाकामे-अज़ल[2]
खत्म जब महफ़िलमें दौरे-जामो-साग़र[3] हो गया

आरज़ू—बज़्मे-इशरतमें[4] न होंगे हमसे नाकामे-अज़ल
खत्म जिनके आते-आते दौरे-साग़र हो गया

अतहर—...... ... .
खत्म जब उस अंजुमन में[5] दौरे-साग़र हो गया

बज़्म—वाये-किस्मत हमसे नाकामे-अज़ल पहुँचे हैं कब
....

बेबाक—वाये-नाकामी निगह साकीकी हमपर कब पड़ी
....

बे.खुद देहल्वी—..................... . ...
खत्म जब बज़्मे-तरबमें दौरे-साग़र हो गया

बेख़ुद मोहानी—[हमसे नाकामे-अज़लके साथ "वाये किस्मत" और "कब पहुँचे जब दौर चल चुका" कुछ बेजोड़-सी बात है। हमेशा इसका ख्याल रहे कि लफ्ज़ोमे तलवारे न खिच जाये।—बेख़ुद मोहानी]

बे.खुद मोहानी—आह जिस महफिल में पहुँचे हमसे नाकामे-अज़ल
झूठे साग़र बोल उट्ठे दौरे-साग़र हो गया

जिगर—वाये-क़िस्मत आके कब पहुँचे है नाकामे-अज़ल
....

जलील—.. ....
खत्म जब महफिलमें उनकी दौरे-साग़र हो गया

---

१. हायरे भाग्य, अफसोस। २. सृष्टिके प्रारम्भसे ही भाग्यहीन असफल। ३. सुरापानका दौर। ४. भोगविलासके उत्सवोंमें। ५. महफ़िलमें।

दिल—' .. ..
खत्म जब बज़्मे-बुताँ में[1] दौरे-सागर हो गया

रियाज़—मैं वही, मैकश[2] वही, महफ़िल वही, साक़ी वही
खत्म मेरे आते ही क्यों दौरे-सागर हो गया ?

साइल—वाये-किस्मत पहुँचे है किस वक्त नाकामे-सरूर[3]
....

शाद—हमसे नाकामे-अज़ल हिरमाँ नसीब[4] आये है कब
....

शफ़क़—वाये किस्मत तिश्ना कामानीं अज़ल[5] पहुँचे तो कब
. ...

सफ़ी—वाये-क़िस्मत पहुँचे भी किस वक्त नाकामे-अज़ल
. ...

फ़ानी—'......... ....
खत्म जब महफ़िलमें उनकी दौरे-सागर हो गया

वहशत—हम तही दस्ताने-क़िस्मत[6] पहुँचे है कब देखना
....

[.गुरेज़, गुज़्तर, नूह, अहसन, बाक़ी शौक ने शुद्धका चिह्न बनाया ।]

० ० ०

सन्देलवी—इक निगाहे-याससे[7] क़ातिलके तेवर बुझ गये
एक छींटेसे लहूके कुन्द[8] खंजर हो गया

---

१. माशूक़ोंकी महफिलमें। २. सुरासेवी। ३. नशेके वास्ते तरसनेवाला, आनन्दसे अनभिज्ञ। ४. अभागे। ५. सृष्टिके प्रारम्भसे ही प्यासे। ६. भाग्यरहित। ७. निराशा-भरी दृष्टिसे। ८. भौंटा, धाररहित।

अहसन—[तेवर बुझ जाना ख़ास लखनऊका मुहावरा है। अगर आप ज़बाने-देहलीकी तकलीद[1] करते है तो इसका इस्तेमाल ना मौज़ूँ[2] है—अहसन]

अहसन—इक निगाहे-याससे जल्लादका दिल बुझ गया
एक आहे-गर्मसे बे-आब ख़ंजर हो गया

आरज़ू—ऐ निगाहे-यास ! बस क़ातिलके तेवर बुझ गये
ख़ूनमें तर होते ही बे-आब ख़ंजर हो गया

बाक़ी—इक निगाहे-यास क़ातिलको पशेमाँ[3] कर गयी
....

बेबाक—[यह शेर पसन्द नही। कलमज़द[4]—बेबाक]

बेख़ुद देहल्वी—इक निगाहे-यास से क़ातिल का ग़ुस्सा मिट गया
....

[रदीफ़का तकाबुल जाइज नही है। लेकिन यह शेर दो लख़्त है, और दो लख़्त शेरके लिए असातज़ाने तकाबुल जायज़ रखा है। बेख़ुद देहल्वी]

बेख़ुद मोहानी—[भई ! कातिलके तेवर बुझ गये तो लहूका छीटा आया कहाँसे। 'कातिलके तेवर बुझ गये' इसका मफहूम यही तो हुआ कि हौसले पस्त हो गये। हिम्मत मुँह मोड गयी। जब यूँ ठहरी तो वार हुआ ही कब। अगर यह कहा जाये कि हम निगाहे-यास ही को लहूका छीटा क़रार देते है, तो पूछनेवाला पूछ न बैठेगा कि आख़िर क्यों ? हाँ कातिलकी आँखोमे कत्ल करते वक्त खून उतर

---

१. अनुकरण। २. अव्यावहारिक। ३ लज्जित। ४. रद्द किया गया।

आया है और निगाहे-क़हरसे लहू बरसने लगता है। मगर यहाँ इस बातका क्या महल है।—बेख़ुद मोहानी]

बेख़ुद मोहानी—.. ...

तीर रक्खे रह गये बेकार ख़ंजर हो गया

दिल—.... ....

हाथ काँपे क़त्लगहमें कुन्द ख़ंजर हो गया

रियाज़—आप ही जाती रही सुर्ख़ी लहूको देखकर

ख़ून मेरा चाटते ही कुन्द ख़ंजर हो गया

साइल—.... ....

चाट लेनेसे लहूके कुन्द खंजर हो गया

शाद—[क्या उम्दा शेर है—शाद]

शफ़क़—उफ रे क़ातिल पर निगाहे-यासे-बिस्मिलका असर

हाथ चलकर रुक गया शर्मिन्दा खंजर हो गया

मुज़तर—इक निगाहे-याससे कातिलकी नज़रें फिर गयीं

....

नूह—[तेवर बुझ गये इसमे मुझे शुब्हा है। यहाँ कोई लुगत (कोश) मौजूद नही कि देखूँ।—नूह]

नूह—......... ....

चन्द छींटों से लहूके कुन्द ख़ंजर हो गया

[अतहर, बज्म, जिगर, गुरेज, जलील, शौक़, सफ़ी, फानी, वहशत-ने उक्त शेर स्वाद किया।]

० ० ०

सन्देलवी—देख ज़ालिम ! तेरे फ़रियादी ने[1] वक़्ते-बाज़[2]पुर्स
वह हवा बान्धी कि सम मैदाने-महशर[3] हो गया

अहसन—[सम हो जाना भी लखनऊका मुहावरा मालूम होता है—अहसन]

अहसन— वक्ते-पुरसिश तेरे फरियादीने ओ-बेदादगर[4] ।
वह हवा बान्धी कि ठण्डा रोज़े-महशर हो गया

आरज़ू—चूँकि ज़ालिम तेरे फरियादीने क़िबलज़-[5]बाज़पुर्स
....

अतहर—[सम—मैंने खामोशके मानीमें नही सुना । अगर लखनऊमें बोलते हो तो रहने दीजिए । गुमसुम तो सुना है—अतहर]

अतहर—..................... ....
वह हवा बान्धी कि सुन मैदाने-महशर हो गया

बाक़ी—[इस शेरका मतलब समझमें नही आया 'सम' क्या ? कलमज़द—बाकी]

बज़्म—[सम हो गया यह मुहावरा नही है—बज्म]

बज़्म—.... ....
वह हवा बान्धी कि सुन मैदाने-महशर हो गया

बेबाक—[यह शेर पसन्द नही—बेबाक]

बेख़ुद देहल्वी—[मैदाने-हश्रको महशर कहते है । मैदानके साथ महशर नही लिखते ।—क़लमज़द]

---

१. न्याय चाहनेवालेने, प्रार्थीने । २. पूछताछके समय । ३. महाप्रलयका क्षेत्र संकुचित, क़यामतका मैदान मौन । ४ ज़ालिम । ५. पूछताछसे पहले ही ।

बेख़ुद मोहानी—[प्यारे शौक ! तुमने यह न देखा कि बाज़ पुर्सका यह महल है कि नही। ताज्जुब है, बाज़ पुर्स कातिलसे हुआ करती है या मकतूलसे। कब्लअजवाज़ पुर्स हो तो सही है मगर खूबसूरती इसमे कहाँ ? बेख़ुद मोहानी]

बेख़ुद मोहानी—कुछ ख़बर है तेरे फरियादीने रखते ही क़दम
. ...

जिगर—देख ज़ालिम तेरे फ़रियादीने वह फरियाद की
चाक दामन खुद-ब-खुद मैदाने-महशर हो गया

जलील— ....
वह हवा बान्धी कि साकित[1] सारा महशर हो गया

दिल— ....
वह हवा बान्धी कि साकित शोरे-महशर[2] हो गया

दिल—.. ....
वह हवा बान्धी कि फीका रंगे-महशर हो गया

रियाज़—मेरी तुर्बतमें मिली मुझको जगह फिर रोज़े-हश्र
तंग मुझपर इस क़दर मैदाने-महशर हो गया

साइल— .. ..
वह हवा बान्धी कि सुम मैदाने-महशर हो गया

शफ़क़—[सम क्या है—शफक]

शफ़क़—हर तरफ इक धूम है नालोंकी, फ़रियादोंका शोर
कूचए-जानाँ भी अब मैदाने-महशर हो गया

शौक़—[सम यहाँ कोई मायनी नही देता। मैदाने-महशर सम नही हो सकता। मस्मूम[3] हो सकता है। शौक]

---

१. अचल, बेहरकत। २. प्रलयका शोर शान्त हो गया। ३. विषाक्त।

शौक़—..
वह हवा बान्धी कि साकित शोरे-महशर हो गया

फ़ानी—[कलमजद (रद्द किया गया)]

मुज़तर—[सम यह लफ्ज पढा नही गया । मुजतर]

नूह—महशर खुद जाए-हश्रको कहते है। अक्सर असातजा (उस्तादो) ने और खुद मैंने पहले अर्से-महशर और मैंदाने-महशर लिखा है। मगर तहकीक़ातसे अब गलत मालूम होता है। —नूह]

नूह—शिद्दते-सोज़े-मुहब्बतका[1] मेरी क्या पूछना
बढ़ते-बढ़ते दाग़े-दिल खुर्शीदे-महशर[2] हो गया

वहशत—..
वह हवा बान्धी कि सम मैदाने-महशर हो गया

[शाद, सफी, अज़ीजने उक्त शेर इस्लाहसे परे समझा, और स्वाद बनाया]

० ० ०

सन्देलवी—आह ज़ालिम हो चुकी इक मुन्तज़िर[3] की आँख बन्द
अब तेरा आना न आना सब बराबर हो गया

आरज़ू—इससे पहले हो चुकी इक मुन्तज़िरकी आँख बन्द
....

अतहर—वाए-हसरत हो चुकी इक मुन्तज़िरकी आँख बन्द
....

बेख़ुद मोहानी—आँखमें आँसू भरे कहते हैं मेरी लाश पर
मेरा आना और न आना सब बराबर हो गया

---

१. प्रेमाग्निकी तीव्रताका। २. प्रलयकालका सूर्य। ३ प्रतीक्षा करनेवालेकी।

रियाज़—आह ज़ालिम हो चुकी मुझ मुन्तज़िरकी आँख बन्द
. . ..

शफ़क़—[एक ही आँख बन्द हुई दूसरी क्यों न हुई।]

शफ़क़—नज़अ़में[1] हूँ तावे-नज्ज़ारा[2] कहाँ ओ-बेवफ़ा।
अब तेरा आना न आने के बराबर हो गया

गुरेज़—[यह शेर रूहे-गजल है। अहसनत ? (उत्तमोत्तम) चार स्वाद दिये गये है] अहसन, बाक़ी, बेख़ुद देहलवी, जलील, दिल, शाद, सफी, फ़ानी, नूह, ने भी इस्लाह रहित समझा और स्वाद बनाया]

० ० ०

सन्देलवी—ज़ाहिदे-बदबींकी[3] उफ़ तर्सी निगाहोंका असर
शीशा चटका बीचसे सौ टुकड़े साग़र हो गया

अहसन—उफ़ तेरी बदबीं निगाहोंका असर ऐ मुह्तसिब[4]!
पारा-पारा शीशा, टुकड़े-टुकड़े साग़र हो गया

आरज़ू—नीयते-ज़ाहिदका आईना[5] है तासीरे-नज़र
शीशा चटका ख़ुद-ब-ख़ुद सौ टुकड़े साग़र हो गया

अतहर—क्या बुरी नीयत है ज़ाहिदकी कि पड़ते ही नज़र
. . . .

बाक़ी—थी निगाहे-ज़ाहिदे-बदबीं कोई पत्थर, मगर
शीशा चटका और टुकड़े-टुकड़े साग़र हो गया

---

१. मृत्युके निकट हूँ, मरनेवाला हूँ। २. देखनेकी शक्ति। ३. छिद्रान्वेषी संयमी, ढोंगी धर्मात्मा। ४ सुरापानसे रोकनेवाला। ५. पाखण्डी ज़ाहिदकी नज़र दर्पण है जिसमें उसकी बुरी नीयत झलकती है।

बज़्म—देखिए तर्सी हुई ज़ाहिदकी नज़रोंका असर
शीशा चटका टुकड़े-टुकड़े मै का साग़र हो गया

[बीचसे चटकना कोई ख़ूबी नही है, सिर्फ़ तर्सी निगाहें कहना ठीक नहीं था। बज्म]

बेबाक—[यह शेर पसन्द नही, बेबाक]

बेख़ुद देहल्वी—ज़ाहिदे-बद्बींकी नज़रें और फिर तर्सी हुई
शीशा चटका, मै गिरी, वेकार साग़र हो गया

रियाज़—पड़ गयी ज़ाहिद्की शायद आँख ललचायी हुई
टुकड़े-टुकड़े हाथमें साक़ीके साग़र हो गया

साइल—ज़ाहिदे-बद्बींकी देखी भी नज़रेहाई निगाह
....

शाद—.... .. ..
चूर शीशा बीचसे दो टुकड़े साग़र हो गया

शफ़क़—['तर्सी निगाहो' ख़िलाफे मुहावरा तिर्छी निगाहों सही है। दूसरे मिसरेमें 'बीचसे चटका'की कैद अच्छी नही। शफक]

शफ़क़—मैकदे पर थी कड़ी ऐसी निगाहे-मुहतसिब।
जाम चकनाचूर टुकड़े-टुकड़े साग़र हो गया

शौक़—सच बताओ ज़ाहिदे बद्बीं! लगी किसकी नज़र
शीशा चटका और टुकड़े-टुकड़े साग़र हो गया

सफ़ी—देखना तर्सी हुई नज़रोंका ज़ाहिद्की असर
शीशा चकनाचूर टुकड़े-टुकड़े साग़र हो गया

१, नज़र लगानेवाली।

मुज़्तर—[कलमज़द]

[अजीज़, जिगर, जलील, दिल, फानी, नूह, वहशत, ने इस्लाहकी जरूरत न समझी और स्वाद बनाया]

० ० ०

सन्देलवी—ख़ाक उड़ायी तेरे दीवानेने ऐसी रोजे-हश्र[1]
गर्द[2] जिसके सामने आशोबे-महशर[3] हो गया

आरज़ू—क़ब्रसे उट्ठा बगोला बनके यूँ वहशी[4] तिरा
....

बेख़ुद मोहानी—किस कयामतकी उड़ायी ख़ाक वहशीने तेरे
....

रियाज़—आस्तींपर आज कातिलके न देखी छींट भी
सुर्ख़ मेरे खूनसे दामाने-महशर हो गया

शफ़क़—ख़ाक उड़ायी तेरे दीवानोंने इतनी हश्रमें
इक बगोला गर्दका मैदाने-महशर हो गया

शौक़—....... . ...
आसमाँ एक और पैदा आसमाँ पर हो गया

वहशत—. . ...
जिसके आगे गर्द खुद आशोबे-महशर हो गया

[अतहर, वज्म, बेबाक, जिगर, अजीज़, मुजतर, अहसन, बाकी, बेख़ुद देहल्वी, जलील, दिल, साइल, शाद सफ़ी, फानी, नूहने संशोधन रहित माना और स्वाद बनाया]

---

१. प्रलयके दिन। २. गर्द, ख़ाक। ३, प्रलयका उपद्रव, कयामतकी आँधी। ४. दीवाना।

सन्देलवी—टुकड़े दिल करता हुआ झोंका नसीमे-सुबहका[1]
बुलबुले-नालाँके[2] हक़में तेज़ ख़ंजर हो गया

अहसन—तेरा झोंका भी था ऐ बादे-ख़िज़ाँ[3]! ख़ारे-शिगाफ़[4]
....

आरज़ू—जिसने गुल बिखरा दिये मोज़ः वोह बादे-तुन्दका[5]
बुलबुले-शैदा[6]के हक़में तेज़ ख़ंजर हो गया

अतहर—क़ैदमें सैय्यादकी झोंका नसीमे-सुबहका
बुलबुले-नालाँके हक़में तीरो-ख़ंजर हो गया

बाक़ी—दिलको टुकड़े कर गया झोंका नसीमे-सुबहका
यानी वह मेरे क़फ़समें[7] आके ख़ंजर हो गया

बज़्म—[यह शेर गलत नही था, मगर मुझे पसन्द न आया। काटकर दूसरा बना दिया है। बज़्म]

बज़्म—क्या दिया चीं-बरजबीं होनेने वक़्ते-ज़िबह काम
उनको गुस्सेमें जो देखा तेज़ ख़ंजर हो गया

बेबाक—जो गिरा पत्ता वह तासीरे-ख़िज़ाँसे बाग़में
....

बेख़ुद मोहानी—यह भी क़िस्मत जाँ[8]फ़िज़ाँ झोंका नसीमे-सुबहका
बुलबुले-हसरत ज़दाके[9] हक़में ख़ंजर हो गया

जलील—दिलको टुकड़े कर गया झोंका नसीमे-सुबहका
....

---

१. प्रातः कालीन मृदु पवनका। २. रुदन करनेवाली बुलबुलके वास्ते। ३. पतझडवाली हवा। ४. घाव करनेवाला काँटा। ५. प्रचण्ड वायुकी लहरोंके फूल। ६. आसक्त बुलबुलके। ७. पिंजरेमें। ८. प्राण संचारक। ९. निराशाग्रस्तके।

दिल—गर्दिशे-क़िस्मतसे हर झोंका नसीमे-सुबहका
....

दिल—मुनहसिर यह है कि हर झोंका नसीमे-सुबहका
... .

रियाज़—बाढ़ दे सकता नहीं ख़ंजरको कोई इस तरह
जब निगह क़ातिलने की तेज़ और ख़ंजर हो गया

शाद—ऐ खिज़ाँ ! झोंका कहाँ तेरा, कहाँ बुलबुलका दिल
उस जबूँ किस्मतके[1] हकमें तेज़ ख़ंजर हो गया

शफ़क़—[नसीमका झोका बुलबुलके लिए खंजर क्यो हो गया ? इसका सबूत चाहिए। बुलबुलके लिए छुरी दरकार है या खजर बहरहाल इस तरह जाइज़ नही। शफक]

शफ़क़—चल गया सर-सरका इक झोंका ख़िज़ाँ में जिस घड़ी
ज़िबहे-बुलबुलके लिए इक तेज़ ख़ंजर हो गया

शौक़—[बिल्कुल फिज़ूल शेर है, कोई खूबी नही—कलमज़द-शौक]

शौक़—क्या खता मेरी जो वारफ्तः[2] किसी पर हो गया
हुस्नको देखा तो दिल काबूसे बाहर हो गया

अज़ीज़—[कलमज़द]

मुज़तर—जब चला गुलज़ारमे[3] झोंका नसीमे-सुबहका
....

नूह—जो गिरा पत्ता ख़िज़ाँ में शाख़े-गुलसे टूट कर
. ...

[साइल, जिगर, बेख़ुद देहल्वी, सफी, फानी, वहशतने स्वाद बनाया]

---

१. अभागेके। २. आसक्त। ३ बगीचेमें।

सन्देलवी—ऐ सरे-शोरीदा[1] थोड़ी और हिम्मत चाहिए
शक़[2] हुई दीवारे-ज़िन्दाँ में[3] नया दर[4] हो गया

अहसन—ऐ सरे-शोरीदा हिम्मतको तेरी सद् मरहबा[5]
खुल गयी दीवार, ज़िन्दाँ में नया दर हो गया

आरज़ू—..
अब गिरी दीवार अब पैदा नया दर हो गया

अतहर—ऐ सरे-शोरीदा क्या कहना है हिम्मतका तेरी
....

बज़्म—ऐ सरे-शोरीदा हाँ थोड़ी-सी हिम्मत और भी
....

बेबाक—..
शक़ हुई दीवारे-ज़िन्दाँ अब नया दर हो गया

बे.खुद मोहानी—[मेरी जान ! जब दीवार शक हो गयी और ज़िन्दाँ-की दीवार दर बन गयी तो अब सरे-शोरीदा गरीब क्या करे। क्यों उसके सर हो रहे हो ? कहीं-न-कहीं, कभी-कभी, रहम भी करते हैं। शक हुई की जगह खुल गयी भी कह सकते है, मगर शक हुईसे इस महलपर जोरे-कलाम बढ़ता है। बेख़ुद मोहानी]

बे.खुद मोहानी—तेरे सद्क़े[6] ऐ सरे-शोरीदा ! क्या कहना तेरा
....

रियाज़—सद्क़े शोरीदा सरीके आज निकली .खूब राह
....

---

१. प्रेमोन्मत्त मस्तिष्क। २. विदीर्ण, टूटी हुई। ३. कारागारकी दीवारमें। ४. द्वार। ५. सैकड़ों शाबासियाँ। ६. कुर्बान जाऊँ, न्योछावर हो जाऊँ।

साइल—ऐ सरे-शोरीदा ! तेरी सई-ओ-हिम्मतके निसार
… …………………… …. .. …… .. ………

शाद—ऐ सरे-शोरीदा मेरे, तेरी हिम्मतके निसार
सारा ज़िन्दाँ काँप उठा दीवारमें दर हो गया

शफ़क़—……….. . .. ……. . . ……… .. ….
शक़ हुई दीवारे-ज़िन्दाँ इक नया दर हो गया

शौक़—[दीवारमे दर तो हो गया अब ज्यादा हिम्मतसे काम लेनेकी ज़रूरत क्या रही ? दीवार गिरे या न गिरे दर काफी है। शौक]

शौक़—ऐ सरे-शोरीदा ! इस शोरीदगींपर आफरीं[1]
. … . . .. … .. .. ……… . .. …

नूह—["थोड़ी-सई" की ज़रूरत थी–नूह]

नूह—ऐ सरे-शोरीदा ! कुछ तो और हिम्मत चाहिए
. …… ……………… .. ……… .. ……. . .

[बाक़ी, बेखुद देहल्वी, जलील, जिगर, दिल, सफ़ी, अज़ीज़, फ़ानी, मुज़्तर, वहशतने स्वाद बनाया और संशोधनसे मुक्त समझा]

सन्देलवो—साथ देता जा ज़रा ऐ ज़ब्त[2] ! थोड़ी देर और
दम इधर निकला कि मैदाने-वफ़ा सर[3] हो गया

आरज़ू—साथ दे कुछ देर और ऐ ज़ब्ते-दर्दे-जाँ ! गुज़ाँ[4]
…. ………………….. . .. ……………….. …

---

१. शाबाश। २. सब्र, सहनशक्ति। ३. विजय। ४. कष्टदायक दर्द।

अतहर—अलमदद[1] ऐ ज़ब्ते-उल्फ़त ! और थोड़ी देर है

....

बज़्म—मरहबा ऐ जब्त ! आ पहुँचे हैं मक़्सदके[2] क़रीब

....

बेबाक—साथ देना इक ज़रा ऐ जब्त ! थोड़ी देर और

....

बेख़ुद देहल्वी—तेरे सद्के ज़ब्ते-ग़म थोड़ी-सी तकलीफ और भी

दम जहाँ निकला वफ़ाका मौर्चा[3] सर हो गया

साइल—साथ देता रह ज़रा ऐ ज़ब्त ! थोड़ी देर और

....

शफ़क़—...

थम गये नाले तो मैदाने-वफ़ा सर हो गया

शौक़—साथ देता जा ज़रा ऐ दर्द थोड़ी देर और

....

नूह—साथ देता जा ज़रा देर और भी ऐ ज़ब्ते-ग़म !

....

[बाक़ी, जिगर, रियाज़, अज़ीज़, मुज़्तर, अहसन, बेख़ुद देहल्वी, जलील, दिल, शाद, सफ़ी, फ़ानी, वहशतने स्वाद बनाया]

सन्देलवी—अब कहाँ है वह जवानी का तिलस्मेदिल फ़रेब[4]

इक तमाशा था कि जो ऐ 'शौक़' ! शबे[5] भर हो गया

---

१. सहायता कर । २. उद्देश्यके, मतलबके । ३. मोर्चा । ४. दिलको लुभाने-वाला, धोखा देनेवाला तिलस्म । ५. रात-भर ।

अहसन—[हज़रत ! उस्तादने शब-भरको इसलिए मतरूक (अव्याव-हारिक) कर दिया कि शप्पर (चमगादड़) का इल्तिबास (गुमान) होता था। नीज़ कानोको अच्छा भी नही मालूम होता। काफ़के बाद 'जो' का इस्तेमाल भी गैर फ़सीह है लिहाजा एक साथ (कि जो) न कहना चाहिए। अहसन]

अहसन—..

इक तमाशा था जो हस्बे-शौक़ दिन-भर हो गया

आरज़ू—ख़्वाब है अब तो जवानीका तिलस्मे-दिल-फ़रेब
'शौक़' वह भी क्या तमाशा था कि शब भर हो गया

अतहर—..

'शौक़' वह भी इक तमाशा था कि शब भर हो गया

वज़्म—[माशा अल्लाह मक्तेमे तिलस्मे-दिल-फरेबका लफ्ज़ खूब कहा है।]

बेख़ुद्मोहानी—अब कहाँ अहदे-जवानीका तिलस्मे-दिल-फ़रेब
'शौक़' यह भी इक तमाशा था कि शब भर हो गया

साइल—फिर न देखोगे जवानीका तिलस्मे-दिल-फ़रेब
'शौक़' वह तो इक तमाशा था जो शब भर हो गया

शाद—'शौक़' क्या कहिए जवानीका तिलस्मे-दिल-फ़रेब
मुख़्तसर-सा इक तमाशा था जो दम भर हो गया

शफ़क़—सुबहे-पीरी ख़्वाब[1] है, गोया जवानीका ख़याल
'शौक' चौंको इक तमाशा था जो शब भर हो गया

---

१. बुढापेका स्वप्न।

फ़ानी—........ ....

'शौक़' वह भी इक तमाशा था कि शब भर हो गया

नूह—['शब भर' दाग साहबने कही नही लिखा। उनका खयाल था कि रात-भर चाहिए। नूह]

नूह—....... ....

देखते ही देखते ऐ 'शौक़' अबतर[1] हो गया

[बाकी, बेबाक, जिगर, रियाज, अजीज, मुजतर, वहशत, बेख़ुद देहल्वी, जलील, दिल, शौक़, सफ़ीने संशोधनसे मुक्त समझा और स्वाद बनाया]

o o o

शौक साहबकी १६ सोलह गजलोपर तब्सिरा (आलोचना) करते हुए। अमीर अहमद साहब अल्वी लिखते है—

इस गुलदस्तेमें सोलह गजले हैं। पहले मुअ़ल्लिफ (शौक सन्देलवी) का शेर जली कलमसे लिखा है। बादको असातजा (उस्तादो) की इस्लाहे और उनके इर्शादात (आदेश) दर्ज है। हैरत होती है कि ज़मानेहालके शुअ़रा किस कदर मुतग़ैयिर मज़ाक (विकृत रुचि) रखते है। जिस शेरपर एक उस्ताद स्वाद बनाता है दूसरा उसको कलमजद करता (निकाल देता) है। मसलन—

१. शौक़ साहबका शेर है—

मक़ाम अफ़सोस का है तुझपै दे दी जिसने जान आख़िर
न उसके वास्ते दिल से तेरे दो गज़ ज़मीं निकली

इसको एक बुजुर्ग बे मानी बताते और कलमजद करते है। दूसरे सुखन फ़हम इस शेरपर स्वाद करते है। चार नाजुक खयाल इस्लाहकी ज़रूरत नही समझते और एक कुहना मश्क यूँ तरक्क़ी देते है—

१. अस्तव्यस्त, दुर्दशाग्रस्त।

न दी उसको जगह कूचे में जिसने जान दी अपनी
न तेरे दिल से उसके वास्ते दो गज़ ज़मीं निकली

२ शेर है—

आह ज़ालिम हो चुकी इक मुन्तज़िर की आँख बन्द
अब तेरा आना न आना सब बराबर हो गया

एक जुबाँ दान मौतरिज (एतराज करते) है कि "एक ही आँख बन्द हो गयी दूसरी क्यो न हुई।" दूसरे नुक्ता-शनास (सूक्ष्मदर्शी) इर्शाद फ़र्माते है कि 'यह शेर रूहे-गजल (गजलकी जान) है" और इसपर चार साद (शुद्धका चिह्न) बनाते हैं। १६ सोलह असातजा (उस्ताद) इस शेरमे इस्लाहकी ज़रूरत नही समझते।

३ शेर है—

दोज़ख है बहारे—हश्त[1] जन्नत
हम से वह कहीं जुदा नहीं है

दो उस्ताद इस शेरपर साद बनाते है, १४ शुअरा इस्लाहकी जरूरत नही समझते। दूसरे खुश फहम फर्माते है कि "दावेका सबूत पाकीज़ा नही।" और तीन नाजुक दिमाग इस शेरको बगैर किसी दलीलके कलमज़द करनेका फतवा देते हैं। एक साहबकी इस्लाह है—

दोज़ख़ भी बहिश्त है हमारी
हम से वह कहीं जुदा नहीं है

४. शेर है—

आख़िरी वक़्त भी क्या साथ निभाया दिल ने
रूठना उनका, इधर दमका खफा हो जाना

---

१. सातवें आस्मानसे ऊपर आठवाँ।

एक उस्तादका एतराज़ है—"दिलने क्या साथ निभाया ? दमका ख़फ़ा हो जाना क्या मानी ?" दूसरे बुजुर्गका इर्शाद है "आख़िरी वक्त कौन किससे रूठता है ? उस वक्त तो जरूर रहम आ जाता है।" एक अदाशनास फर्माते है—"रूठना और ख़फा होना लुत्फ दे रहा है।" मगर तीन उस्ताद शेरपर साद बनाते है। और छह बुज़ुर्ग इस्लाहकी जरूरत नही समझते।

५. शेर है—

मआले-कार अपनी हस्तिए—मौहूम का यह है
हयाते-चन्द रोज़ा वह भी ग़फलत में गुज़र जाना

एक साहब फर्माते है—"हयात चन्द रोज़ा हस्तिए-मौहूमका मआल नही बल्कि उसकी हकीक़त है। इसका मआल तो सिर्फ़ फ़ना है।" दूसरे ज़बानपरस्त फ़र्माते हैं—"वह भी गफ़लतमे गुज़र जाना खिलाफ़ मुहावरा है। लेकिन छह उस्ताद साद बनाते है और छह उस्ताद इस्लाहकी ज़रूरत नही समझते वग़ैरह, वग़ैरह, वग़ैरह।"

इस तिलस्मी गुलदस्तेमे यह तमाशा भी नज़र आता है कि हमारे ज़मानेके बाज़ मुस्तनद असातज़ा (प्रामाणिक उस्ताद) बजाय इसके कि शागिर्दके मज़मूनको तरक़्की देने और अस्क़ाम (दोषो) को दूर करनेकी कोशिश करें, नया शेर तसनीफ़ (निर्माण) कर देते है। जिसको शागिर्दके ख़यालसे कुछ भी वास्ता नही होता। मसलन

१. मक्ता है—

तेरी बेदारियों से 'शौक़'! थीं तम्हीद ग़फलत की
वह पर्दा रात का था जिसको आग़ाज़े-सहर जाना

इसपर इस्लाह होती है—

नज़र में क्यों न फिरती 'शौक़' फिर तस्वीर महशर की
किसी का सर झुकाकर था ग़ज़ब वक़्ते-सहर जाना

समझमे न आया कि शागिर्दके ख़यालसे इस्लाह शुदा शेरको क्या तअ़ल्लुक़ है। अलबत्ता यह इस्लाह क़ाबिले-तारीफ़ है—

रही ऐ 'शौक़'! इक तमूहीदे-ग़फ़लत मेरी बेदारी
वह था पिछला पहर शब का जिसे मैंने सहर जाना

२. मक्ता है—

ख़ूबरूओ से[1] कहीं करके मुहब्बत ऐ 'शौक़'!
न ख़ुदा के लिए महसूरे-बला[2] हो जाना

एक मुसल्लिम उल सबूत उस्तादकी (प्रामाणिक) इस्लाह है—

मर्गे-उश्शाक़ की हालत वही समझे साहिल
जिसने देखा है हुबाबों का फ़ना हो जाना

[प्रेमियोकी मृत्युकी स्थिति वही नदीका किनारा समझ सकता है—जिसने दरियामे पानीके बुलबुलोके क्षणभंगुर जीवनको नष्ट होते हुए देखा है]

दूसरे मुस्तनद बुजुर्गका फ़र्मान है—

'शौक़' ने इश्के-मजाज़ी का यह देखा अंजाम
पायेबन्द रहे तस्लीमो-रज़ा[3] हो जाना

अफसोस है कि शागिर्दके मज़मूनसे इन तरक्की याफ्ता अशआरको जो नाज़ुक ताल्लुक है, वह हम ऐसे ज़ाहिरबीनोको[4] नजर नही आ सकता!! अलबत्ता यह इस्लाह गनीमत है—

ख़ूबरूओं की मुहब्बत है मुसीबत ऐ 'शौक़'!
तुम ख़ुदारा[5] न गिरफ्तारे-बला हो जाना

---

१. माशूक़ोंसे, रूपवतियोंसे। २ मुसीबतोंमें गिरफ्तार। ३. माशूक़की रुचि और आज्ञाका पाबन्द। ४. वाह्यदृष्टि वालोंको। ५. ख़ुदाके वास्ते।

३. शेर है—

हो चुकी जामादरी[1] बख़िया गरी होती है,
ऐ जुनूं बस यहीं दो शग़्ल हैं दीवानों के

इस्लाह देनेवाले फ़रमाते है—

वज्द[2] करते हैं बयाबाँ में बगोले लाखों
उर्स[3] होते हैं बड़ी धूम से दीवानों के

शागिर्दके मज़मूनसे सिवाय काफ़ियेके क्या वास्ता है ? बेशक यह इस्लाह क़दरके क़ाबिल है—

है कभी जामादरी और कभी बख़िया गरी
जोशे-वहशत में यह दो शग़्ल हैं दीवानों के

•

---

१. शरीरके वस्त्रोंका फाड़ना। २. नृत्य। ३. क़व्वालियोंकी महफिल।

परिचय

शौक साहबने जिन उस्तादोसे इस्लाहे ली है, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

१. अहसन मारहवी

[जन्म १८७६ ई०; मृत्यु १९४० ई०]

सैयद अलीअहसन मिर्जा दागके मुख्य शिष्योमे-से थे। आपने वर्षो तक अपने वतन मारहर (पटना)से दूर हैदरावाद दकनमे उस्तादके चरणोमे वैठकर शाइरीमे दक्षता प्राप्त की। मिर्जा दाग अक्सर आप ही से वाहरके सागिर्दोकी आयी हुई गजले पढवाते थे और जो इस्लाह देते थे, आप ही से लिखवाते थे। आप वहुत-सी पुस्तकोके रचयिता एवं उर्दू-भापाके अधिकारी विद्वान् थे।

२. आर्जू लखनवी

[जन्म १८७२ ई०; मृत्यु १९५१ ई०]

सैयद अनवर हुसेन 'आर्जू' जलाल लखनवीके पट्टशिष्य थे। वारह वर्षकी अवस्थासे शेर कहने लगे थे। अरवी-फारसीके ज्ञाता थे। कलकत्ते और वम्वई रहकर फिलम कम्पनियोके वास्ते गीत भी लिखे। फुगाने-आर्जू, जहाने-आर्जू और सुरीली वाँसुरी तीन संकलन आपने स्मृति-स्वरूप छोडे है।

३. बेख़ुद देहल्वी

[जन्म १८६३; मृत्यु १९५५]

हाजी सैयद वहीदुद्दीन अहमद 'बेख़ुद' मिर्जा दागके शिष्य थे। १२ वर्षकी उम्रसे आपने शेर कहना शुरू कर दिया था। देहलीकी टकसाली उर्दूके आप माहिर थे। आपके बाबा 'सालिक' उपनामसे, पिता 'सालम' उपनामसे और आपके दो चाचा 'मौजूँ' और 'फर्द' उपनामसे एवं आपके मामा 'शैदा' उपनामसे शेर कहते थे। और आर्ज़दा आपकी माताके फूफा थे। गोया यूँ कहना चाहिए कि—

"पुश्तें गुज़री हैं इसी दश्त की सैयाही में"

४. शफ़क़

हकीम सैयद हसन शफकका जन्म १८७२ ई० में हुआ। बिहारके रहनेवाले थे। ९ वर्षकी उम्रमें शेर कहने शुरू किये। १८९२ ई० मे आप अमीर मीनाईके शिष्य हुए। आपका अधिकाश कलाम 'नातिया' है। आपके गज़लोके कई संकलन प्रकाशित हो चुके है।

५. शौक़ क़िदवाई

[जन्म १८५३; मृत्यु १९२८ ई०]

मुन्शी अहमद अली शौक लखनऊके आस-पासके निवासी और 'असीर' लखनवीके शिष्य थे। अरबी और फारसीके विद्वान् थे। अवध पंच, लखनऊके ख्यातिप्राप्त लेखक, और अखबार 'आजाद' लखनऊके ऐडीटर थे। आपका दीवान प्रकाशित हो गया है।

६. सफ़ी लखनवी

[जन्म १८६२; मृत्यु १९५० ई०]

सैयद अली नकी जैदी 'सफी' लखनऊमे जन्मे 'लस्सानुल कौम' खिताबसे सम्मानित किये गये। आपका शुमार लखनऊके ख्यातिप्राप्त उस्तादोमे था।

७. मुजतर ख़ैराबादी

[जन्म १८६५ ई०; मृत्यु १९२६ ई०]

सैयद इफ्तख़ार हुसेन मुजतर ख़ैराबाद निवासी और अमीर मीनाईके शिष्य थे।

८. वहशत कलकतवी

[जन्म १८८१; मृत्यु १९५६ ई०]

रजाअली वहशत कलकत्तेमे १८८१ मे पैदा हुए। भारत विभाजनके बाद आप ढाका (पूर्वी पाकिस्तान) चले गये। १९३१ मे आप ख़ानबहादुर ख़िताबसे सम्मानित हुए। आप उच्चकोटिके शाइर थे। दीवाने-वहशत और तरानए-वहशत नामक दो दीवान आपके प्रकाशित हो चुके है।

९. हसन

[जन्म १८५७; मृत्यु १९०७ ई०]

हाजी मुहम्मद हसन रज़ाख़ाँ बरेली निवासी और दागके शिष्य थे। आपका अधिक परिचय प्राप्त न हो सका।

१०. साइल

[जन्म १८६८; मृत्यु १९४५]

नवाब सिराजुद्दीन अहमदख़ाँ 'साइल' देहल्वी मिर्ज़ा दागके जामाता और शिष्य थे। उन्हीके रंगमे शेर कहते थे। उर्दू-ज़बान आपके घरकी लौडी थी। निहायत, शकील, जमील, ख़ुशगुलू और ख़ुशजेब बुज़ुर्ग थे।

११. दिल शाहजहाँपुरी

ऐतबारुल मुल्क हकीम मौलवी ज़मीरहसन 'दिल' शाहजहाँपुरी अमीर मीनाईके शिष्य थे। १५ वर्षकी उम्रसे शाइरीका चस्का लगा। आपके ग़ज़लोंके दो दीवान प्रकाशित हो चुके है। आपके बहुत-से शिष्य है।

१३. फ़ानी बदायूनी

[जन्म १८७९; मृत्यु १९४१]

शौकत अलीख़ाँ फ़ानी बदायूँ निवासी थे। आप यासयासके इमाम समझे जाते थे। बी० ए० एल०-एल० बी० थे। तमाम उम्र अथक परिश्रम और उद्योग करते रहे, किन्तु असफलता और निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नही लगा।

१२. अजीज़ लखनवी

[जन्म १८८२; मृत्यु १९३५ ई०]

मिर्ज़ा मुहम्मद हाजी अजीज़ लखनऊ निवासी थे। जोश मलीहाबादी असर लखनवी और जगतप्रसाद रवाँ-जैसे ख्याति प्राप्त शाइरोके आप कविता-गुरु थे। सफी लखनवीसे शुरू-शुरूमें आपने मशविरए-सुख़न लिया। गज़ल और कसीदे आप ख़ूब कहते थे। आपके दो दीवान प्रकाशित हुए है।

सूचना—(१) जलील मानिकपुरी, रियाज ख़ैराबादी, शाद अजीमाबादी, नूह नारवी, के परिचय इस परिच्छेदसे पूर्व उन-द्वारा दी गयी इस्लाहोके साथ दिये जा चुके है।

(२) निम्नलिखित शाइरोका परिचय प्रयास करनेपर भी प्राप्त नही हो सका—

अतहर—मौलवी सैयद माशूक हुसेन साहब 'अतहर' वकील जौनपुर।

बज़्म—मिर्ज़ा आशिक हुसेन साहब 'बज़्म' अकबराबादी, मैराजुल शुअ़रा अज गाजियाबाद।

बेबाक—मौलाना सैयद हुसेन अहमद शाह साहब 'बेबाक' शाहजहाँपुरी।

बे.ख़ुद—सैयद मुहम्मद अहमद साहब 'बेख़ुद' बी०-ए० मोहानी शिया कॉलेज लखनऊ।

सर इक़बालकी इस्लाहें अपने क़लामपर

[जन्म १८७३; मृत्यु १९३८ ई०]

डॉक्टर सर मुहम्मद इकवालके पूर्वज काश्मीरी पण्डित थे। एम० ए० करनेके वाद १९०५ ई० मे वैरिस्टरीकी सनद लेनेके लिए आप लन्दन चले गये। १९०८ ई० मे वापस आकर वैरिस्टरी करने लगे। १९२२ मे सरका ख़िताव मिला। उर्दू-फार्सीमे आपने बहुत उच्चकोटिकी शाइरी की है। प्रारम्भमें आप राष्ट्रीय विचारोके थे, किन्तु लन्दन जानेके वाद आपपर साम्प्रदायिक रंग चढ गया। आप उर्दूके सर्वश्रेष्ठ शाइर होनेके अतिरिक्त मुसलमानोके नेता भी थे। सर्वप्रथम आप ही के मस्तिष्कमे पाकिस्तानका अंकुर फूटा था। हालीने अपनी नज्मो-द्वारा मुस्लिम पूर्वजोका गौरव-गान गाया, और वर्त्तमान मुस्लिम कौमके पतनपर रुदन किया तो सर सैयदने अलीगढमे मुस्लिम-यूनिवर्सिटीकी स्थापना करके मुस्लिम-क़ौमको आधुनिक शिक्षाकी तरफ प्रेरित किया। उन्हे इस तरहकी शिक्षा-दीक्षा देनेकी व्यवस्था की कि वे पडौसी कौमोके मुकाविलेमे हर क्षेत्रमे कार्य करने योग्य तो हुए ही, साथ ही अपने राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारोके लिए कटिवद्ध होने लगे और सम्प्रदायवादके प्रवल समर्थक वनने लगे, और सर इकवालने अपने कलामसे मुस्लिम समाजमे वोह अभूतपूर्व स्फूर्ति, शक्ति, दृढता एवं आत्म-विश्वासका संचार किया कि मुर्दोमे जान पड़ गयी। परिणाम-स्वरूप मुस्लिम समाज वग़ैर हाथ-पाँव हिलाये भारतका विभाजन कराके एक वहुत वड़े भारतीय क्षेत्रको पाकिस्तानमे परिवर्तित करानेमे कामयाव हो गया।

●

पिछले पृष्ठोंमे दो प्रकारकी इस्लाहोंके उद्धरण दिये जा चुके हैं। अब यहाँ तीसरी प्रकारकी ऐसी इस्लाहका नमूना पेश किया जा रहा है, जो कि किसी उस्ताद-द्वारा इस्लाह न दी जाकर स्वयं शाइरने अपने कलामपर की है।

यहाँ हम सर इकबालकी नमूनेके तौरपर केवल एक 'हिमालय' शीर्षक नज्म दे रहे है, जो कि पहली बार लाहौरके 'मख़ज़न' रिसाले (अप्रैल १९०१ ई०) मे प्रकाशित हुई थी। फिर यही नज्म संशोधित परिवर्द्धित होकर १९२४मे 'बाँगेदराँ' (सर इक़बालकी उर्दू-कविताओंका प्रथम संकलन) मे मुद्रित हुई। यहाँ उक्त नज्म 'मख़ज़न' में प्रकाशित बाईं ओर 'बाँगेदराँ' मे मुद्रित अंश दाईं ओर दे रहे हैं, ताकि पाठकोंको पता चल सके कि स्वय डॉ० इकबालने अपने कलामपर किस प्रकार इस्लाह की है।

हिमालय

(१)

ऐ हिमालय ! ऐ फ़सीले-किश्वरे हिन्दोस्ताँ[1]
चूमता है तेरी पेशानी[2] को झुककर आसमाँ
तुझ पै कुछ ज़ाहिर नहीं देरीना[3] रोज़ी के निशाँ
तू जवाँ है दौरए-शामो-सहर[4] के दरमियाँ
तेरी हस्ती पर नहीं बादे-तग़य्युर[5] का असर
ख़न्दः ज़न[6] है तेरी शौकत[7] गर्दिशे-ऐय्यामपर[8]

(२)

इस्तहाने-दीदए[9]-ज़ाहिर में कोहिस्ताँ[10] है तू
पासबाँ[11] अपना है तू, दीवारे-हिन्दुस्ताँ है तू
सूए ख़िलवत गाहे[12]-दिल दामन-[13]कशे-इन्साँ है तू
मतलए-अव्वल फ़लक जिसका हो वह दीवाँ[14] है तू
बर्फ़ ने बाँधी है दस्तारे-फ़ज़ीलत[15] तेरे सर
ख़न्दः-जन[16] है जो कुलाहे-महरे-आलम ताब पर[17]

---

१. भारतीय दुर्गकी प्राचीर । २ मस्तक । ३. बुढापेके चिह्न । ४. सन्ध्या और प्रातःकालमें । ५. इन्किलाबो हवाओंका । ६, मुस्कराती है । ७. ऐश्वर्य । ८ समय-चक्र, कालचक्र । ९. बाह्य दृष्टिमें । १०, पवन । ११. रक्षक । १२. हृदयमन्दिरके एकान्त स्थलका । १३. दामन बचाता हुआ, स्वाभिमानी । १४. जिसके कविता संकलनका प्रथम शेर आकाश है । १५. श्रेष्ठताकी पगड़ी । १६. हँस रही है । १७ विश्वरूपी चन्द्रमाकी आभारूपी पगडीपर ।

(१)

....

....

तुझमें कुछ पैदा नहीं देरीना रोज़ीके निशाँ
तूँ जवाँ है गर्दिशे-शामो-सहरके दरमियाँ
एक जल्वा[1] था कलीमे-तूरे-[2]सीनाके लिए
तू तजल्ली[3] है सरापा[4] चश्मे-बीना[5]के लिए

(२)

....

....

मतलए-अव्वल फ़लक जिसका हो वह दीवाँ है तू
सूए-ख़िलवत-गाहे-दिल दामन-कशे-इंसाँ है तू
....

....

१. चमत्कार। २. तूर पर्वतपर ईश्वरीयरूप देखनेके इच्छुक मूसाके लिए। ३. ईश्वरीय प्रकाश। ४. पूर्णरूपेण। ५. दृष्टिवालोंके।

(३)

सिलसिला तेरा है या बहरे-बुलन्दी मौजज़न[1]
रक़्स[2] करती है मजेसे जिस पै सूरजकी किरन
तेरी हर चोटीका दामाने-फ़लक[3] में है वतन
चश्मए-दामन[4] में रहती है मगर परतव फ़िगन[5]
चश्मए-दामन है या आईनए-सैय्याल[6] है
दामने-मौजे-हवा जिसके लिए रूमाल है

(४)

अब्र[7] के हाथोंमें रहवारे-हवा[8] के वास्ते
ताज़ियाना[9] दे दिया [10]बर्के-सरे-कोहसार[11] ने
ऐ हिमालय! कोई बाज़ीगाह[12] है तू भी जिसे
दस्ते-क़ुदरत[13] ने बनाया है [14]अनासिरके लिए
हाय क्या जोशे-[15]मसर्रतमें चला जाता है अब्र
फ़ील बे-[16]ज़ंजीरकी सूरत उड़ा जाता है अब्र

---

१. तरंगित समुद्रसे। २ नृत्य। ३. आकाशके आँचलमें। ४. झरनेके आँचलमें। ५. प्रकाश फैलाती हुई। ६. तरल दर्पण। ७. बादल। ८. वायुरूपी घोड़ेके। ९. हण्टर। १०. बिजली। ११. पर्वत श्रेणीने। १२. क्रीड़ास्थल। १३. प्रकृतिके हाथोंने। १४. पंच भूतके। १५. आनन्दोल्लासमें। १६. ज़ंजीररहित हाथी।

(३)

तेरी उम्रे-रफ़्ता[1]की इक आन है अहदे-कुहन[2]
वादियोंमें हैं तेरी काली घटाएँ ख़ेमः जन[3]
चोटियाँ तेरी [4]सुरय्यासे हैं सरगर्मे-सुख़न[5]
तू ज़मी पर और पिन्हाए-फ़लक[6] तेरा वतन
चश्मए-दामन तेरा आईनए-सैय्याल है
....

(४)

....
....
....
....
हाय क्या फ़र्ते-तरब[7]में झूमता जाता है अब्र
....

१. भूतकालीन इतिहासकी। २. प्राचीनत्व। ३. तम्बू ताने हुए। ४. सप्ततारिकाओंसे। ५. वार्तालापमें लीन। ६. आकाश क्षेत्र। ७. आनन्दोल्लासमें।

(५)

जुम्बिशे-मौजे[1]-नसीमे-सुबहे[2]-गहवारा बनी
चूमती है क्या मज़े ले-लेके हर गुलकी कली
यूँ ज़बाने-[3]बर्गसे कहती है उसकी खामुशी
दस्ते-[4]गुलचींकी झटक मैंने नहीं देखी कभी
कह रही है मेरी खामोशी ही अफसाना[5] मेरा
कुंजे-ख़िलवत[6] ख़ानए-क़ुदरत है काशाना[7] मेरा

(६)

नहर चलती है सरूदे-[8]खामुशी गाती हुई
आइना-सा[9] शाहिदे-कुदरत[10]को दिखलाती हुई
कौसरो-तस्नीम[11]की मानिन्द लहराती हुई
नाज़[12] करती है फराज़े-[13]राहसे जाती हुई
छेड़ता जा इस इराक़े-दिल[14]-नशींके साज़को
ऐ मुसाफिर ! दिल समझता है तेरी आवाज़को

---

१. वायुकी लहरोंके झकोरे। २. झूलनारूपी प्रातःकाल। ३. पत्तियोंकी वाणीसे। ४. फूल तोडनेवाले हाथोंकी। ५. क़िस्सा। ६. प्रकृतिके एकान्त स्थलका कोना। ७ निवासस्थान। ८. मौन संगीत। ९. दर्पण-सा। १०. प्रकृतिरूपी प्रेयसीको। ११. जन्नतमें बहनेवाली मदिराकी नदी। १२. अभिमान। १३ उच्च मार्गसे। १४ हृदय-मन्दिरके वाद्यको।

(५)

....

झूमती है नशए-हस्ती[1]में हर गुलकी कली
यूँ ज़बाने-बर्गसे गोया[2] है उसकी ख़ामुशी

....

....

....

(६)

आती है नदी फ़राज़े-कोह[3]से गाती हुई
कौसरो-तस्नीमकी मौजोंको शर्माती हुई
आईना-सा शाहिदे-क़ुदरतको दिखलाती हुई
संगे-रह[4]से गाह[5] बचती गाह टकराती हुई
छेड़ती जा उस इराके-दिल-नशींके साज़को

....

---

१. जीवनके नशेमें। २. वार्तालाप करती हुई। ३. पर्वतकी ऊँचाईसे। ४. मार्गके पत्थरोंसे। ५. कभी।

उस्तादके कलामपर इस्लाह

इस परिच्छेदसे पूर्व शिष्योंके कलामपर उस्तादोकी और स्वय अपने कलामपर इकबालकी इस्लाहोके नमूने पेश किये गये है। अब हम तीसरे ढंगकी इस्लाहकी झलकियाँ दे रहे है। अर्थात् अमीर मीनाई-द्वारा दी गयी अपने उस्ताद 'मुसहफी'के कलामपर इस्लाहे। 'मुसहफी' अपने जीवनमे अपना दीवान मुद्रित न देख सके। उनकी मृत्युके बाद 'अमीर' मीनाईने उनके कलामका संकलन प्रकाशित कराया तो मनमाने अनेक सशोधनो एवं परिवर्द्धनो सहित।

जनाब अताउल्लाह पालवीने 'एक अदबी डायरीके दो वरक' शीर्षकसे अगस्त १९४८ ई०के 'शाइर'मे 'अमीर'की इस अनधिकार चेष्टापर प्रकाश डाला है और हजरत 'असर' लखनवीने नवम्बरके शाइरमे अताउल्लाह साहबका समर्थन करते हुए उनके भावोको और स्पष्ट किया है। हम यहाँ उक्त दोनों महानुभावोके लेखोके आधारपर अमीर मीनाई-द्वारा दी गयी इस्लाहोपर अपनी भाषा और अपने ढंगसे रौशनी डाल रहे हैं, और जहाँ उक्त महानुभावोके उद्धरणकी आवश्यकता समझी है, वहाँ उनके नामके साथ उनका मत व्यक्त कर दिया गया है।

मुसहफ़ी—एहतियाजे-शमअ़ क्या है, 'मुसहफी' अपने तईं
है दिले-पुर सोज़ अपना कुँजे-ख़िलवत का चिराग़

[ऐ मुसहफी ! अपने लिए दीपककी क्या आवश्यकता है ? निर्जन स्थानके अँधेरेको भगानेके वास्ते अपना दग्ध हृदय-दीपक काफ़ी है]

मुसहफी देहल्वी थे और उनके ज़मानेमे देहलीवाले 'अपने लिए, आपके लिए'की जगह 'अपने तईं' भी बोलते थे। एक बार मिर्ज़ा

गालिब लखनऊ गये तो एक साहित्यिक गोष्ठीमें लखनऊ और दिल्ली-की भाषापर वार्त्तालापके प्रसंगपर एक सज्जनने मिर्ज़ासे कहा—

"जिस मौकेपर अहले देहली 'अपने तईं' बोलते है, वहाॅ अहले-लखनऊ 'आपको' बोलते है। आपकी रायमें फसीह (लालित्यपूर्ण) 'आपको' है या 'अपने तईं' ?"

मिर्जाने जवाब दिया—"फ़सीह तो यही मालूम होता है जो आप बोलते है। मगर इसमें दिक़्कत ये है कि मसलन आप मेरी निस्बत यह फ़र्माएँ कि मै आपको फरिश्ता खसाइल (देव-स्वभावी) जानता हूँ, और मैं इसके जवाबमे अपनी निस्बत यह अर्ज़ करूँ कि मैं तो आपको कुत्तेसे भी बदतर समझता हूँ, तो सख्त मुश्किल वाकअ् होगी। मैं तो अपनी निस्बत कहूँगा और आप मुमकिन है कि अपनी निस्बत समझ जायें।" यह लतीफा सुनकर सब हाज़रीन फड़क गये।

अमीर मीनाई लखनवी थे। अतः आपको मुसहफीके पहले मिसरेमे 'अपने तईं' सुरुचि पूर्ण नही लगा। साथ ही मुसहफ़ीके दूसरे मिसरेमें 'चिराग' तो था, किन्तु लखनवी शाइरीके अनुकरणमे 'रात'का उल्लेख नही था। अत. अमीरने 'अपने तईं' निकालकर 'हंगामे-शब' जड़ दिया।

> एहतियाजे-शमअ् क्या है, 'मुसहफी' हंगामे-शब
> है दिले-पुरसोज़ अपना कुँजे-ख़िलवतका चिराग़

असर लखनवी—इस्लाह देनेवाला यह भूल गया कि दिलके जलनेके लिए दिन या रातकी तख़सीस (ज़रूरी) नही और कुंजे-ख़िल्वत सीनए- तंगो-तार (सूना हृदयस्थल संकीर्ण एवं अन्धकारपूर्ण) है। जहाँ रात ही में अँधेरा नही, दिनको भी उजाला नही होता। अमीरकी इस्लाहने इस बुसअतेमाअ्नी (विशाल अर्थके शेर) का ख़ून कर दिया।

मुसहफ़ी—तू भी आवे जो तमाशे को तो मानिंदे-अनार
फूल रखता है हज़ारों शजरे-नालः-ए-शब

[विरह-वेदनासे तड़पते हुए मुझ आशिककी दयनीय स्थितिका तमाशा देखनेके लिए तू (माशूक़) कभी आता भी है तो आतिशबाज़ीके अनारकी तरह चिगारियाँ फेकता हुआ, क्रोधकी फुलझड़ियाँ बखेरता हुआ। सम्भवत. तुझे यह नही मालूम कि मेरे रात्रिकालीन आहोके वृक्ष इस प्रकारके हजारो फूल रखते है। [मेरी आहो-फुगाँ स्वयं ही चिनगारियाँ बखेरती है]

अताउल्लाह—अमीर साहबने देखा कि शेरमे नालए-शबका जिक्र है और माशूकसे जो आनेके लिए कहा गया है तो उसे वक्त बताया ही नही गया है। लिहाज़ा शेरपर यूँ इस्लाह देकर शाया कराया।

वक्ते-शब आओ तमाशेके लिए मानिंदे-अनार
फूल रखता है हज़ारों शजरे-नालः-ए-शब

जब शजरे-नाल-ए-शब' मौजूद है तो ऊले मिसरेमे 'वक्ते-शब' का इजाफा (परिवर्त्तन) तहसीले-हासिल (व्यर्थ) है।

मुसहफ़ी—यारमारीके सबब कोहकन-ओ-वामिक़-ओ-क़ैस
बचके आया न कोई इश्क़के मैदाँ से हनूज़

अताउल्लाह—अमीर साहबने सोचा कि 'यार मारी' का लफ्ज़ जामअ् सही, मगर अपने दौरकी ज़बान नही है। दूसरे आखिरी मिसरेमे जब मैदानका ज़िक्र है तो 'तेग़' का होना ज़रूरी है। लिहाजा इस शेरपर यूँ इस्लाह दी गयी—

तमए-तेग़ हुए कोहकन-ओ-वामिक़-ओ-क़ैस
बचके आया न कोई इश्क़के मैदाँ से हनूज़

असर—'यारमारीके सबब' न कदीम (प्राचीन) जबान है, न जदीद (वर्तमान) जाहिल कातिब (मूर्ख लिपिक) ने 'यार मारे गये सब' को 'यारमारीके सबब' पढ़ा और लिख दिया। मेरे पास 'मुसहफी'के दीवानका एक कलमी नुस्ख़ा (प्रति) है और उसमे वही लिखा है, जो मैंने अर्ज़ किया। इस्लाहने तो कमाल ही कर दिया कि कोहकन (फ़रहाद) वामिक और कैसको तेगके घाट उतार दिया। हालाँकि इनमें-से कोई भी शहीद नही हुआ।

मुसहफ़ी—आर्ज़ू में तिरी ऐ ज़ुहरा: जबीं ! यारों की
आँखें रहती हैं लगी रख़नए-दीवारके साथ

[ऐ चन्द्रमुखी ! तुझे देखनेकी लालसामे तेरे घरकी दीवारकी दरारमे आँखे लगी रहती है कि कभी-न-कभी तो इस तरफ आते-जाते दीदार नसीब होगा]

अताउल्लाह—अमीर साहबने देखा कि मुसहफीके शेरमे उमूमियत है। यानी अपने बजाय यारोका भी जिक्र है। लिहाजा इसमें ख़ुसूसियत (विशेषता) पैदा करनी चाहिए। साथ-ही-साथ यह ख़याल वक्ती हो जाता है। बजाय इसके उसमें हमेशगी होनी चाहिए। नीज़ इसका क्या पता कि उसकी दीवारमे रखन था। मुमकिन है पुख़्ता दीवार हो, मगर रोज़न (सूराख़) तो ज़रूर ही होगा। लिहाजा शेरपर यह इस्लाह देकर शाया कराया—

आर्ज़ू है तेरे दीदारकी ऐसी कि मुदाम[1]
आँखें रहती हैं लगी रोज़ने-दीवारके[2] साथ

---

१. सदैव। २ दीवारके सूराख़में।

असर—मुसहफीने 'तारोकी' कहा होगा, जिसे कातिबने—'यारोकी' समझा । इसतरह शेरका मतलव आईन. (स्पष्ट) हो जाता है । मुसहफीका सलीका देखिए कि माशूकको 'माहे जबी' (चन्द्रमुखी) के बदले जुह्राजबी (शुक्र नक्षत्रमुखी) कहा क्योकि माह (चन्द्रमा) हर शव नमूदार (प्रत्येक रात्रिको उदय) होता है और जुह्रा (सितारा) कभी-कभी, वह भी एक खास मुस्तकर (निश्चित स्थान) से नही । इस्लाहने शेरको उन तमाम हकाइक और लताइफसे महरूम (वास्तविकता एवं लुत्फसे वचित) कर दिया और सिर्फ यह ओछा मतलब रह गया कि माशूकके रोज़ने-दीवारसे मुदाम आँखे लगी रहती है । ताहम दीदार नसीब नही होता ।

गोयलीय—किवला 'असर' ने एक बहुत अछूती कल्पनाका उल्लेख किया है । मुसहफीने अपने पहले मिसरेमें 'माहेजबी' के वजाय 'जुह्र जबी' का नगीना जडा है, हालाँकि दोनोका समान वजन है और 'माहेजबी' बा-आसानी मौज़ूँ किया जा सकता था और अधिकांश शाइर माशूक़को 'माहेजबी' ही कहते है । सौन्दर्य्यमे 'जुह्राजबी' से 'माहेजबी' का मर्त्तबा बहुत बुलन्द है । फिर भी मुसहफीने 'माहे-जबी' न कहके 'जुह्र जबी' कहा ।

इसका सबव यही है कि 'माह' (चन्द्रमा) तो रोजाना दिखाई देता है । अत. रोजाना दिखाई देनेवाले माशूकको देखनेके लिए रोजने-दीवारसे आँखे लगी रहनेसे क्या लाभ ? आँखे तो उसी माशूककी रखनए-दीवारसे लगी होगी । जिसकी झलक कभी-कभी मिलती हो, और यह खूबी जुह्रः (शुक्र-नक्षत्र) मे होती है ।

मुसहफ़ी—कब ख़ूँमें भरा दामन, क़ातिल ! नहीं मालूम
किस वक़्त यह दिल होगा बिस्मिल नहीं मालूम

अताउल्लाह—अमीर साहबने सोचा कि माज़ी (भूतकालीन) की तुक गलत है। बल्कि मुस्तकबिल (भविष्य) का ख़याल बेहतर है। लिहाजा शेरपर यूँ इस्लाह दे दी—

कब ख़ूँ में भरे दामन, क़ातिल नहीं मालूम
कब साहिबे-दौलत हो यह बिस्मिल नहीं मालूम

असर—बिस्मिलके साहिबे-दौलत होनेकी भी बहुत हुई।

मुसहफ़ी—वोह बहर है दरियाए-सरिश्क अपना कि जिसका
पहनायी नज़र आवे है, साहिल नहीं मालूम

[अपने आँसुओंका दरिया ऐसा समुद्र है कि जिसका विस्तार तो दिखायी देता है, किन्तु किनारेका पता नही]

अताउल्लाह—अमीर साहबने सोचा कि 'बहर' का तो जिक्र है, मगर मल्लाहका पता ही नही और फिर आशिककी आँखका दरिया है तो उसमें मल्लाह भी काफी न होगा। लिहाज़ा शेरपर यूँ इस्लाह देकर शाया कराया—

वोह बहर है दरियाए-सरिश्क अपना कि जिसका
मल्लाह तो क्या नूह[1]को साहिल नहीं मालूम

असर—कहाँ एक दरियाए-नापैदा कनार (असीम, अपार समुद्र) आँखोंके सामने मौज्ज़न (तरंगित) था। जिधर देखो और

---

१. एक पैग़म्बर, जिनके समयमें पानीका बहुत बड़ा तूफान आया था।

जहाँ तक देखो पानी ही पानी। कहाँ मल्लाह और नूहकी ठूँस-ठाँस ! इस्तगफ्फार अल्लाह (अल्लाह रहम करे)

मुसहफ़ी—उसके दर पर ही जो रहता हूँ पड़ा मैं दिन-रात
मुझसे झुँझलाके कहे है "तेरा घर है कि नहीं ?"

अताउल्लाह—अमीर साहबने सोचा कि शेरमे जो मुस्तकिल (स्थायी) पड़े रहनेका ज़िक्र है, यह शाने-खुद्दारी (स्वाभिमानकी प्रतिष्ठा) के खिलाफ है। नीज आखिर कहा किससे गया। इसका शेरमे कही पता नही। लिहाजा इस शेरपर यूँ इस्लाह देकर उसे मत्ता बना दिया गया—

उसके दर पर जो मैं बैठा तो यह झुँझलाके कहा—
"मुसहफी जा भी यहाँ से तेरा घर है कि नहीं ?"

असर—कहाँ दरपर दिन-रात पड़ा रहना, कहाँ सिर्फ़ दरपर बैठना ? कहाँ सिर्फ इतना कहना कि "तेरा घर है कि नही" ? जिसने दिन-रात पड़े रहनेके मफहूम (आशय) को मुकम्मिल कर दिया। कहाँ 'मुसहफी जा भी' की मोहमलीयत (अर्थहीनता, बकवास) एक बात और अर्ज़ कर दूँ। और वोह 'तेरा घर' और 'तेरे घर' का नाज़ुक मानवी फर्क है। तेरा घरसे मिल्कियत मफहूम अदा—(स्वामित्वका भाव प्रकट) होता है और 'तेरे घरसे' मकामे-बूदो-बास (रहनेका स्थान) ठौर-ठिकाना। मुसहफीके दीवानमे जिसका हवाला दे चुका हूं 'तेरे घर ही' तहरीर (लिखा हुआ) है।

मुसहफ़ी—किस तरह कोई रोक रक्खे उसको, क्या करे ?
उम्रे-रवाँ तो जाती है आबे-रवाँकी तरह

अताउल्लाह—अमीर साहब इससे पहले गालिबका इस मौजूँपर यह शेर देख चुके थे—

रौ में है रख़्शे-उम्र कहाँ देखिए थमे
नै हाथ बागपर है ना पा है रकाबमें

[आयु रूपी अश्व दौड़ रहा है, न मालूम कहाँ ठहरेगा। सवारके हाथमें न बागडोर है और न रकाबमे पाँव है] लिहाजा उन्होने सोचा कि वहाँ घोड़ेका जिक्र है तो यहाँ सवारको पेश करना चाहिए। चुनाच. शेरपर इस्लाह देकर यूँ दुरुस्त किया और मतला बना दिया—

रोके कोई सवार उसे क्या इनाँ[1] की तरह
उम्रे-रवाँ[2] तो जाती है आबे-रवाँ[3] की तरह

असर—लीजिए साहब! जुल्मात (अँधेरों) मे घोड़े दौड़ते-दौड़ते आबे-रवाँ (प्रवाहित दरिया) में भी दौड़ने लगे। 'इनाँकी तरह' ने तसन्नोह (कृत्रिमता) पर आखिरी हर्फ़ लिख दिया।

मुसहफ़ी—'मुसहफ़ी'! मिस्रे-मुहब्बतकी करूँ क्या तारीफ
कौन-सा शहर है इस गर्मिए-बाज़ारके साथ ?

अताउल्लाह—अमीर साहबने सोचा कि मिस्र तो बहुत छोटा-सा शहर है और उस्तादकी मुहब्बत यकीनन बहुत बड़ी होगी, लिहाज़ा इस्लाह देकर यूँ शेर बना दिया।

वस्फ़ अक़लीमे-मुहब्बतका करे क्या कोई
कौन-सा शहर है, इस गर्मिए-बाज़ारके साथ

असर—'अक़लीम' मुल्क है और मिस्र शहर! एक शहरका तो दूसरे शहरसे मुक़ाबिला और मवाज़नः (तुलना) हो सकता है। लेकिन मुहब्बतको अक़लीम कहकर उसका तक़ाबुल (तुलना) शहरसे करना न सुखनवरी है न दानिशमन्दी (अक्लमन्दी)।

---

१. बागडोर, लगामकी। २. बहती हुई उम्र। ३. बहते हुए पानीके समान।

मुसहफ़ी—यह अब्रे-सियह ताब नहीं, उड़के गया है
आशिकका मेरे नामए-आमाल¹ हवापर

[आकाशमे यह काले बादल नही है। वल्कि आशिक़के नामए आमाल हवामे उड़के गये है]।

अताउल्लाह—यह शेर अमीर साहबको पहले बहुत पसन्द था। चुनाच उन्होने इस ख़यालको अपनाकर खुद अपना यह शेर कहा था—

जब देखते हैं अब्रे-सियह कहते हैं हम मस्त—
"उड़ता हुआ जाता है यह मैखाना किसीका"

मगर जब अस्ल शेरको गाया करनेका वक्त आया तो उन्होने सोचा कि इस शेरको अपने शेरका सही माख़ज़ (उद्धरण) बनाकर पेश करना चाहिए। चुनाच उन्होने इस शेरको यूँ इस्लाह देकर पेश किया—

घिर-घिरके नहीं अब्रे-सियह आता है साक़ी!
मस्तोंका यह है नामए-आमाल हवापर

असर—अस्ल शेरमें 'मेरे' कितावत (प्रतिलिपि करने) की गलती है। 'तेरे' चाहिए। इस्लाहका पादर हवा (निराधार-काल्पनिक) होना बदीअ (अद्भुत अजीवो-गरीब) है। मुसहफीने 'उड़के गया है' का टुकड़ा लगाकर नामए-आमालको अब्रे-सियह तावमे मुब्दल (परिवर्त्तित) कर दिया। इस्लाहने इस सदाक़ते-शेरी (शेरकी यथार्थता) की मुत्लक़ परवाह न की

१. वह कागज़ जिसपर यमदूत हरेक व्यक्तिके सत्कर्म और कुकर्म लिखते है, कर्मोंका लेखा-जोखा।

और शेरको तनासुबे-अल्फाज (शब्दोके रखरखाव) का घरौंदा बना दिया।

अताउल्लाह—इस तरहकी सैकड़ों इस्लाहें है। कहाँतक नक़ल की जाये ? अगर क़दीम सरमायः (पुरातन निधि) हर जमानेमे नया-नया बनाकर पेश किया जाने लगा तो शायद वह दिन दूर नही कि 'मीर' और 'गालिब' का कलाम हमारी आइन्दा नस्लें हिन्दी भाषाओंमे पढ़-पढकर खुश होगी। और कहेगी कि हज़ारों बरस क़ब्ल (पूर्व) किस तरहसे शाइर ये जबाने लिख गये थे।

●

उर्दू-शाइरीका

प्रामाणिक इतिहास, तुलनात्मक अध्ययन

साहित्यिक विवेचन

और

प्रारम्भसे वर्त्तमान कालीन १८८ शाइरोंका

सर्वश्रेष्ठ कलाम और जीवन-परिचय

एवं

१५४ शाइरों एवं १७४ शाइराओंका केवल कलाम-संकलन

५२३३ पृष्ठोंमें यह

सम्पूर्ण संग्रहणीय साहित्य

१७ भागोंमें उपलब्ध

शेरो-शाइरी	....	आठ रु०
शेरो-सुख़न (पाँचो भाग)	....	बीस रु०
शाइरीके नये दौर (पाँचो भाग)	....	पन्द्रह रु०
शाइरीके नये मोड़ (पाँचो भाग)	....	पन्द्रह रु०
नग़मए-हरम	....	चार रु०